# सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण

सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण विश्व-ऐतिहासिक कार्य था, खासकर इसलिए भी कि रूस एवं सोवियत संघ के अन्य घटक देश बेहद पिछड़े हुए थे और पहले की उम्मीदों के विपरीत रूस की अक्टूबर समाजवादी क्रांति के बाद किसी विकसित पूंजीवादी देश में मजदूरों का राज कायम नहीं हो पाया। ऐसे में प्रथम विश्व युद्ध और गृह युद्ध से जर्जर पिछड़े सोवियत संघ में अपने ही दम पर और वह भी साम्राज्यवादी घेरेबंदी का सामना करते हुए समाजवाद का निर्माण करना पड़ा। यह इतना चुनौतीपूर्ण और दुरूह कार्य था कि हर कदम पर सोवियत पार्टी (पहले रूस की कम्युनिस्ट पार्टी [बोल्शेविक]) में इसको लेकर बड़े मतभेद पैदा होते रहे और पहले लेनिन तथा बाद में स्टालिन का नेतृत्व इनसे जूझते हुए ही समाजवादी निर्माण की दिशा में आगे बढ़ा। इन सबने सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण तथा इससे निर्मित सोवियत समाजवादी समाज पर अपनी छाप छोड़ी। बाद में भी सोवियत समाजवाद के भविष्य में इन्होंने अपनी भूमिका अदा की।

आगे के पृष्ठों में सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण के विभिन्न चरणों का और इन दौरों में प्रस्तुत चुनौतियों का किंचित विस्तार से वर्णन किया जायेगा जिससे इसका एक समग्र चित्र प्रस्तुत हो सके।

## I
## सत्ता पर कब्जे के ठीक बाद

महान अक्टूबर समाजवादी क्रांति 7 नवम्बर, 1917 (पुराने रूसी कैलेण्डर के हिसाब से 25 अक्टूबर, 1917) को तब शुरू हुई जब राजधानी पेत्रोग्राद के मजदूरों और सैनिकों ने बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में सत्ता पर कब्जा कर लिया। इसी के साथ मास्को एवं अन्य बड़े शहरों में भी सत्ता पर कब्जा होता गया और क्रांति की लहर उसके बाद छोटे शहरों से होते हुए गांवों तक फैलती गई। जब दिसंबर में किसानों की दूसरी अखिल रूसी कांग्रेस राजधानी पेत्रोग्राद में आयोजित हुई तथा उसने नयी क्रांतिकारी सरकार को स्वीकार कर लिया तो यह एक तरह से महान अक्टूबर क्रांति के देशव्यापी विजय का प्रतीक भी थी। इस कांग्रेस के बाद वामपंथी समाजवादी क्रांतिकारी नयी क्रांतिकारी सरकार में बोल्शेविकों के साथ शामिल हो गये।

अक्टूबर समाजवादी क्रांति ने अपने शुरुआती काल में, जिसे 1918 के मध्य तक माना जा सकता है, मुख्यतः दो कार्य सम्पन्न किये : पहला, जनवादी क्रांति के बचेखुचे कार्यभारों को पूरा करना तथा दूसरा, पुरानी राज्य मशीनरी व बड़ी पूंजी पर हमला।

1905 से ही बोल्शेविक पार्टी की यह मान्यता रही थी कि रूस की आसन्न क्रांति बुर्जुआ जनवादी क्रांति है पर रूस का पूंजीपति वर्ग इसे सम्पन्न नहीं कर सकता। वह इसे नेतृत्व नहीं प्रदान कर सकता। इस बुर्जुआ जनवादी क्रांति को नेतृत्व प्रदान करने का कार्य केवल मजदूर वर्ग ही कर सकता है। मजदूर वर्ग सभी किसानों को अपने नेतृत्व में गोलबंद करते हुए तथा पूंजीपति वर्ग को तटस्थ करते हुए बुर्जुआ जनवादी क्रांति सम्पन्न करेगा और मजदूरों-किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व कायम करेगा। लेकिन मजदूर वर्ग यहीं रुकेगा नहीं। वह इस अधिनायकत्व के तहत जनवादी कार्यभारों को पूरा करते हुए स्थितियों के मुताबिक कम या ज्यादा समय में सर्वहारा अधिनायकत्व की ओर बढ़ जायेगा। वह अर्द्ध सर्वहारा को अपने पीछे गोलबंद करते हुए तथा मध्यम किसानों को तटस्थ करते हुए धनी किसानों और पूंजीपति वर्ग के खिलाफ क्रांति सम्पन्न करेगा तथा सर्वहारा अधिनायकत्व कायम करेगा। इसी के साथ समाजवादी क्रांति का नया चरण शुरू होगा।

मेंशेविक बोल्शेविकों की इस कार्यनीति के खिलाफ पूंजीपति वर्ग के नेतृत्व में बुर्जुआ जनवादी क्रांति सम्पन्न करने की बात करते थे जिसमें मजदूर वर्ग की केवल सहयोगी की भूमिका होनी थी। इसमें भी मजदूर वर्ग को ध्यान रखना था कि कहीं पूंजीपति वर्ग उसकी क्रांतिकारिता से भयभीत होकर क्रांति से पीछे न हट जाये। बुर्जुआ जनवादी क्रांति के बाद पूंजीवादी समाज का एक लम्बा समय गुजरना था जिसमें भविष्य की समाजवादी क्रांति के लिए मजदूर वर्ग को तैयारी करनी थी तथा अपना सांस्कृतिक स्तर इतना ऊंचा उठाना था कि वह भविष्य के समाजवादी समाज का निर्माण कर सके और उसे संचालित कर सके। अपनी इस कार्यनीति के तहत वे बुर्जुआ जनवादी क्रांति में क्रांतिकारी सरकार में भागेदारी के खिलाफ थे।

बोल्शेविकों-मेंशेविकों दोनों से अलग ट्राट्स्की की अपनी तीसरी लाइन थी। उसका नारा था-'जार नहीं, अपितु मजदूरों की सरकार'। यानी आसन्न बुर्जुआ जनवादी क्रांति में मजदूर वर्ग को जारशाही का खात्मा कर तुरंत सर्वहारा अधिनायकत्व कायम कर देना चाहिए। चूंकि बुर्जुआ जनवादी क्रांति के तुरंत बाद सारे किसान प्रतिक्रियावादी हो जायेंगे, इसीलिए क्रांति का भविष्य उस यूरोपीय क्रांति पर निर्भर करेगा जिसे रूसी क्रांति प्रेरित करेगी। तब यूरोपीय सर्वहारा की मदद से रूस में समाजवाद का निर्माण संभव हो सकेगा। यदि यूरोपीय क्रांति नहीं होती तो रूसी क्रांति आंतरिक और पर वाह्य प्रतिक्रियावादियों के सामने नहीं टिक पायेगी।

जब फरवरी, 1917 (नये कैलेण्डर के हिसाब से मार्च, 1917) में रूस में बुर्जुआ जनवादी क्रांति हुई और जारशाही का खात्मा हो गया तो रूसी सामाजिक जनवादी मजदूर पार्टी की उपरोक्त तीनों धाराओं ने स्वयं को नयी स्थिति में पाया। फरवरी क्रांति राजधानी पेत्रोग्राद के मजदूर वर्ग ने (बाद में सैनिकों की भागेदारी से) सम्पन्न की थी। उसने मजदूरों और सैनिकों की सोवियतों के रूप में

अपना क्रांतिकारी निकाय भी कायम किया था। पर मजदूर वर्ग की अभी कम क्रांतिकारी चेतना तथा उसमें मेंशेविकों व समाजवादी क्रांतिकारियों की अपेक्षाकृत ज्यादा पैठ से फायदा उठा कर पूंजीपति वर्ग सरकार बनाने में कामयाब हो गया था। इससे दोहरी सत्ता की स्थिति पैदा हुई।

मेंशेविकों ने इस सरकार को समर्थन दिया और समय के साथ और ज्यादा समझौतापरस्ती का प्रदर्शन करते हुए वे इस सरकार में शामिल हो गये। समाजवादी क्रांतिकारियों ने भी यही किया। जब बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग ने अक्टूबर क्रांति में सत्ता पर कब्जा किया तो उसने इन्हीं के ही नामधारी समाजवादी मंत्रिमंडल को सत्ता से बेदखल किया। बुर्जुआ जनवादी क्रांति में सरकार में न शामिल होने की बात मेंशेविक कब की भूल चुके थे।

बात केवल यहीं तक सीमित नहीं थी। बुर्जुआ वर्ग अपने चरित्र के अनुरूप बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभारों को पूरा करने के लिए तैयार नहीं था। वह सामंती तत्वों से समझौता किये बैठा था। दूसरी और मेंशेविक और समाजवादी क्रांतिकारी इस बुर्जुआ वर्ग से समझौता किये बैठे थे। वे भी बुर्जुआ जनवादी कार्यभारों को पूरा करने को तैयार नहीं थे। इसीलिए ऐसा हुआ कि फरवरी क्रांति के आठ महीने बाद जब अक्टूबर क्रांति हुई तो ढेरों जनवादी कार्यभार बचे हुए थे जो इस क्रांति ने सम्पन्न किये।

बुर्जुआ जनवादी क्रांति के इन बचे हुए कार्यभारों के कारण ही स्वयं बोल्शेविक पार्टी में अप्रैल तक यह धारणा मौजूद थी कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति अभी पूरी तरह सम्पन्न नहीं हुई है और इसीलिए तात्कालिक कार्यभार इस क्रांति को आगे बढ़ाने का है। कामेनेव जैसे नेताओं के लिए यह अस्थाई सरकार के आलोचनात्मक समर्थन तक ले जाता था।

लेनिन ने विदेश रहते ही फरवरी क्रांति का मूल्यांकन कर यह निष्कर्ष निकाल लिया था कि बुर्जुआ जनवादी क्रांति सम्पन्न हो चुकी है और मजदूरों-सैनिकों की सोवियतों के रूप में मजदूरों व किसानों का क्रांतिकारी जनवादी अधिनायकत्व भी कायम हो चुका है क्योंकि सैनिक और कुछ नहीं बल्कि वर्दीधारी किसान ही हैं। पर सोवियतों पर काबिज मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों के पेटी बुर्जुआ ढुलमुलपन और समझौतापरस्ती के कारण बुर्जुआ वर्ग सत्ता पर कब्जा करने में कामयाब रहा है। ठीक इसी कारण बचे हुऐ बुर्जुआ जनवादी कार्यभार पूरे नहीं हो सकते। न तो किसानों को जमीन मिल सकती है और न विश्व युद्ध से बाहर आया जा सकता है। अब आगे का रास्ता समाजवादी क्रांति से होकर जाता है। मजदूर वर्ग की समाजवादी क्रांति ही बचे हुए जनवादी कार्यभारों को पूरा करेगी और रूस को वर्तमान विपदापूर्ण स्थिति से बाहर निकालेगी। बोल्शेविकों का ऐसे में यही कार्यभार बनता है कि धैर्यपूर्वक मजदूर वर्ग को इस सोच पर खड़ा करें तथा सोवियतों में बहुमत हासिल करें। क्रांति का तात्कालिक नारा 'समस्त सत्ता सोवियतों के हाथ में' होगा

क्योंकि इसके जरिये दोहरी सत्ता की स्थिति को समाप्त कर मजदूर वर्ग का राज कायम किया जा सकता था। यहां यह गौरतलब है कि पार्टी के भीतर कामेनेव जैसे विरोधियों ने लेनिन का विरोध करते हुए कहा था कि रूस की स्थितियों में समाजवाद को लागू नहीं किया जा सकता। इस पर लेनिन ने कहा था कि सवाल समाजवाद को लागू करने का नहीं बल्कि रूस की विकट स्थितियों में आगे बढ़ने का है जो अब सर्वहारा क्रांति के जरिये ही संभव है। आगे समाजवाद का निर्माण स्थितियों पर निर्भर करेगा।

अप्रैल के अंत तक समूची बोल्शेविक पार्टी इस नयी सोच पर खड़ी हो चुकी थी और मजदूर वर्ग को जीतने के प्रयास में जुट गई थी। जब ट्राट्स्की मई में विदेश से लौटकर आया तो बोल्शेविक पार्टी की इस नीति से सहमति जताते हुए वह बोल्शेविक पार्टी में शामिल हो गया। यह अलग बात है कि बाद में उसने दावा किया कि वह बोल्शेविक पार्टी की सोच पर नहीं गया था बल्कि बोल्शेविक पार्टी उसकी सोच पर आ गई थी।

अस्तु, जब बोल्शेविक पार्टी के नेतृत्व में मजदूर वर्ग ने सत्ता पर कब्जा किया तो पहला कदम इन जनवादी कार्यभारों को पूरा करने की दिशा में बढ़ाया। क्रांति के पहले ही दिन भूमि आज्ञप्ति जारी कर जमीनों का राष्ट्रीयकरण कर दिया गया और जमींदारों-जागीरदारों की जमींनों का किसानों के बीच वितरण के लिए नियम घोषित किये गये। बिना हर्जाने और बिना संयोजन के युद्धरत देशों के बीच शांति के लिए युद्धरत देशों की सरकारों और उनकी जनता से अपील की गयी। रूस एक लम्बे समय से राष्ट्रीयताओं का जेलखाना रहा था। इस स्थिति को समाप्त करने के लिए अक्टूबर क्रांति के बाद राष्ट्रीयताओं को अलग होने सहित आत्मनिर्णय का अधिकार दिया गया तथा इसी के तहत दिसंबर में फिनलैण्ड की आजादी को मान्यता दी गई। महिलाओं की सदियों की गुलामी की स्थिति को समाप्त करने के लिए कानून बनाये गये। इत्यादि इत्यादि। इन कदमों को 1918 के मध्य तक अमली जामा भी पहना दिया गया। इसमें अच्छी खासी कीमत पर जर्मनी के साथ ब्रेस्त-लितोव्स्क शान्ति संधि भी शामिल है जिसके जरिये रूस विश्व युद्ध से बाहर आ सका और क्रांति को सांस लेने का मौका मिला।

जैसा कि लेनिन ने बाद में कहा, अक्टूबर सर्वहारा क्रांति ने जनवादी क्रांति के बचे हुए कार्यभारों को चलते-चलते पूरा कर दिया। वह ऐसा इसलिए कर सकी क्योंकि वह निजी सम्पत्ति की सीमाओं से नहीं बंधी हुई थी। पहले की बुर्जुआ जनवादी क्रांतियां यदि बुर्जुआ जनवादी क्रांति के कार्यभारों को अपनी पूर्णता में अंजाम नहीं दे सकीं थीं तो केवल इसीलिए कि वे निजी सम्पत्ति की सीमाओं से बंधी हुयी थीं। क्रांति को आगे बढ़ाने पर स्वयं बुर्जुआ निजी सम्पत्ति को खतरा था। रूस के क्रांतिकारी मजदूर वर्ग को इस बात का कोई भय नहीं था क्योंकि वह किसी भी तरह की निजी सम्पत्ति के खिलाफ था।

यदि बाद में दूसरे इंटरनेशनल के सुधारवादियों से लेकर अन्य ने यह कहा कि अक्टूबर क्रांति सर्वहारा क्रांति नहीं बल्कि वस्तुतः बुर्जुआ जनवादी क्रांति थी तो उसका वस्तुगत आधार यही था। पर अक्टूबर क्रांति केवल उपरोक्त तक सीमित नहीं थी। बल्कि यदि वह उपरोक्त तक सीमित रहती तो पहले की तरह वह भी बुर्जुआ जनवादी कार्यभारों को पूरा नहीं कर पाती। वस्तुतः अक्टूबर क्रांति

ने इसी बीच दो और बेहद महत्वपूर्ण कार्यभार सम्पन्न किये जो क्रांति को भविष्य की ओर ले जाते थे। ये थे पुरानी राज्य मशीनरी और बड़ी पूंजी पर हमला।

नवम्बर 1917 से फरवरी 1918 के दौर को लेनिन ने 'राजधानी पर लाल दस्तों के हमले की मंजिल' कहा था। इस हमले के कई पहलू थे।

बोल्शेविकों के लिए यह मानी हुई बात थी कि राज्यसत्ता की पुरानी मशीनरी को चकनाचूर किये बिना मजदूर वर्ग अपने मिशन की ओर नहीं बढ़ सकता। अभी हाल ही में लेनिन ने अपनी 'राज्य और क्रांति' में जो 1918 में प्रकशित हुई, इसका विस्तार से विश्लेषण किया था। 1871 के पेरिस कम्यून का यह एक सबसे महत्वपूर्ण सबक था।

अब जब अक्टूबर क्रांति में सर्वहारा ने सत्ता पर कब्जा किया तो यह सवाल एकदम व्यावहारिक रूप में पेश हो गया। फरवरी क्रांति के बाद पुरानी जारशाही राज्य मशीनरी जस की तस बनी हुई थी। मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने उसमें जरा भी छेड़छाड़ करने की कोशिश नहीं की थी। उनके सुधारवादी और समझौतापरस्त चरित्र को देखते हुये इसकी जरूरत भी नहीं थी।

लेकिन जब बोल्शेविकों के नेतृत्व में मजदूर वर्ग ने सत्ता पर कब्जा किया तो स्थिति एकदम बदल गई। इससे पहले कि बोल्शेविक इस राज्य मशीनरी पर हमला करते, इस मशीनरी के कारकूनों ने-अफसरों और बाबुओं ने-बोल्शेविकों और नयी सरकार से असहयोग की घोषणा कर दी। इस असहयोग को समाप्त करने के लिए क्रांति ने सख्त कदम उठाया और समूची नौकरशाही का पुनर्गठन किया गया। तनख्वाहों, विशेषाधिकारों में बड़े पैमाने पर परिवर्तन से लेकर कारकूनों में बदलाव तक सब इसमें शामिल थे। मंत्रालयों, विभागों का पुनर्गठन किया गया और उनकी कार्यपद्धति को बदला गया।

लेकिन सबसे बड़ा परिवर्तन उसमें हुआ जो राज्य मशीनरी का सबसे अहं हिस्सा होता है। रूस की सेना पहले ही काफी विसंगठित हो चुकी थी। सैनिक मोर्चों से भागकर शान्ति की समस्या हल कर रहे थे। फरवरी क्रांति में भाग लेकर सेना अब पहले जैसी नहीं रह गयी थी। पर ढर्रा और ढांचा अभी भी बहुत कुछ पहले जैसा बचा हुआ था।

अक्टूबर क्रांति के बाद यह सब कुछ तेजी से बदलने लगा। क्रांतिकारी सेना की पांतों में हथियारबंद मजदूर वर्ग की बड़े पैमाने पर भागेदारी के साथ क्रांति के मोर्चों पर सेना अब वह नहीं रह गयी जो वह पहले थी। बाद में जब गृहयुद्ध के दौरान लाल सेना का गठन हुआ तो सेना का चरित्र पूरी तरह बदल गया। इस क्रांतिकारी लाल सेना ने ही तीन सालों के भीषण गृहयुद्ध और विदेशी हस्तक्षेप में विरोधियों को मात दी और क्रांति की रक्षा की।

जहां तक पुलिस और खुफिया विभाग का संबंध है उसे भंग कर मिलीशिया और मजदूर किसान निगरानी समिति का गठन किया गया जिन्होंने बाद में ज्यादा सुगठित रूप ग्रहण किया। इसी तरह परम्परागत अदालतों के बदले क्रांतिकारी न्यायाधिकरण का गठन किया गया तथा बाद में चुने हुए जजों से युक्त न्यायालय बनाये गये।

पुरानी राज्य मशीनरी को ध्वस्त कर नयी राज्य मशीनरी गठित करने के उपरोक्त प्रयास क्रांति के अनुरूप ही क्रांतिकारी थे। पर तब भी कुछ अवशेष बचे रह गये जिन्होंने बाद में नौकरशाही के विकास में मदद की और समस्याएं पैदा की।

पुरानी राज्य मशीनरी को ध्वस्त करने के साथ सोवियत सत्ता ने पूंजीपति वर्ग की आर्थिक शक्ति पर हमला बोला तथा राष्ट्रीय अर्थतंत्र के मर्मस्थल पर अपना नियंत्रण कायम किया। मिलों, कारखानों, बैंकों, रेलों और विदेशी व्यापार बेड़ों पर कब्जा कर लिया गया। इनका राष्ट्रीयकरण कर इन्हें जनता की सम्पत्ति घोषित कर दिया गया। बड़े पूंजीपति वर्ग के हाथों में मौजूद उत्पादन के साधनों पर सर्वहारा राज्य के इस नियंत्रण ने न केवल समाजवादी राज कायम किया बल्कि आगे सामाजवादी समाज के निर्माण का आधार भी तैयार किया। पूंजीपति वर्ग की सम्पत्ति पर इस हमले ने उसकी कमर तोड़ दी।

अक्टूबर क्रांति ने तुरंत ही भूमि का राष्ट्रीयकरण कर उसे किसानों में वितरित करने की आज्ञप्ति जारी की थी। पर अब यह पाया गया कि किसानों में भूमि वितरण का सारा फायदा देहातों के धनी किसान या कुलक उठा रहे हैं जो देहातों के शोषक वर्ग थे। कुलकों के हाथों में जमीन का हस्तांतरण रोकने के लिए गरीब किसानों की समितियां गठित की गईं। इन समितियों ने कुलकों पर सख्ती से नियंत्रण कायम किया। जब इन समितियों का काम पूरा हो गया तो साल के अंत में इन्हें ग्राम सोवियतों में विलयित कर दिया गया।

हालांकि ब्रेस्त-लितोव्स्क शांति संधि के बाद वामपंथी समाजवादी क्रांतिकारी सरकार से अलग हो गये थे पर क्रांतिकारी सरकार को कोई खतरा नहीं था। अब शांति की मोहलत पाकर बोल्शेविक पार्टी ने समाजवादी निर्माण की दिशा में बढ़ने के लिए कुछ कदम उठाये। इसमें पहला काम तो यही था कि युद्ध से जर्जर और विसंगठित अर्थव्यवस्था को फिर से अपने पैरों पर खड़ा किया जाये और चालू किया जाये। इसके लिए जरूरी था कि उत्पादन-वितरण का समुचित हिसाब-किताब रखा जाये। उत्पादन में अनुशासन कायम किया जाये। इसके लिए एक व्यक्ति के प्रबन्धन को अपनाया जाये। तनख्वाहों में काम के हिसाब से मजदूरी का नियम लागू किया जाये। उत्पादन को सुचारु ढंग से संचालित करने के लिए बुर्जुआ विशेषज्ञों को काम पर लगाया जाये और उन्हें कुछ ऊंची तनख्वाहें दी जायें। समाजवादी प्रतियोगिता को बढ़ावा दिया जाये।

ऊपरी तौर पर ये कदम पूंजीवाद की दिशा में पीछे लौटते हुए दिखाई देते थे, इसीलिए बोल्शेविक पार्टी के भीतर इन पर तीखा विवाद हुआ। अपने को 'वामपंथी' कहने वालों ने इनका तीखा विरोध किया। उन्होंने कहा कि यह सब और कुछ नहीं राजकीय पूंजीवाद है। पर लेनिन अच्छी तरह जानते थे कि उत्पादन-वितरण की व्यवस्था को चालू किये बिना समाजवादी निर्माण की ओर नहीं बढ़ा जा सकता था।

लेनिन ने बताया कि रूस में उस समय पांच तरह की उत्पादन प्रणाली विद्यमान थीं : निर्वहन वाली प्राकृतिक अर्थव्यवस्था, छोटी माल उत्पादन व्यवस्था, निजी पूंजीवादी अर्थव्यवस्था, राजकीय पूंजीवाद और समाजवाद। छोटी माल उत्पादन व्यवस्था और निजी पूंजीवाद दोनों राजकीय पूंजीवाद और समाजवाद से संघर्ष कर रहे थे। ऐसे में राजकीय पूंजीवाद की ओर कदम वास्तव में आगे की ओर कदम था। सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत राजकीय पूंजीवाद समाजवाद के आधार का काम करता था।

[ बोल्शेविक पार्टी के भीतर के इन वामपंथियों ने ब्रेस्त-लितोव्स्क संधि का भी तीखा विरोध किया था। अपने को ज्यादा अंतर्राष्ट्रीयतावादी दिखाते हुए उन्होंने कहा कि यह संधि विश्व सर्वहारा से गद्दारी है। उनके अनुसार यह संधि नही की जानी चाहिए और रूसी क्रांति की बलि देकर भी विश्व क्रांति को आगे बढ़ाना चाहिए। इनके विपरीत लेनिन का कहना था कि ठीक विश्व क्रांति की खातिर ही रूसी क्रांति की रक्षा की जानी चाहिए और कुछ ज्यादा कीमत चुका कर भी जर्मनी से शांति संधि कर ली जानी चाहिए। कहने की बात नहीं कि इतिहास ने लेनिन को सही साबित किया।]

पर क्रांतिकारी रूस अभी तक इस दिशा में कुछ आगे बढ़ सकता इसके पहले ही उसे गृहयुद्ध और विदेशी हस्तक्षेप से दो-चार होना पड़ा। आगे के तीन साल क्रांति के लिए भीषण अग्नि परीक्षा के काल थे।

# II

# युद्धकालीन कम्युनिज्म

जर्मनी से शांति-संधि के थोड़े समय बाद ही 'मित्र राष्ट्रों' ने सोवियत रूस के खिलाफ जंग छेड़ दी। ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका और जापान सभी इसमें शामिल थे। दूसरी ओर जर्मनी भी अपने तरीके से सोवियत सत्ता के खिलाफ सक्रिय था।

जब तक सोवियत रूस की जर्मनी से शांति संधि नहीं हुयी थी, मित्र राष्ट्र आश्वस्त थे। एक तो जर्मनी रूस से उलझा हुआ था, दूसरे उन्हें लगता था कि जर्मनी से युद्ध में सोवियत सत्ता ध्वस्त हो जायेगी और रूस में फिर पूंजीवादी निजाम कायम हो जायेगा। लेकिन जब सोवियत सत्ता विरोधियों को परास्त कर मजबूती से टिक गई और जर्मनी से शान्ति-संधि हो गई तो 'मित्र राष्ट्र' के साम्राज्यवादी बौखला गये। इसके कई कारण थे।

जर्मनी की रूस से शान्ति हो जाने के कारण अब जर्मनी अपनी फौजें रूसी मोर्चे से हटाकर पश्चिमी मोर्चे पर लगा सकता था। इससे 'मित्र राष्ट्रों' के खिलाफ जर्मनी की स्थिति मजबूत होती थी। दूसरे, इस शांति संधि से सभी मोर्चों पर सैनिकों के बीच शांति की आकांक्षा जोर पकड़ सकती थी जो साम्राज्यवादियों के खिलाफ थी। तीसरा और सबसे महत्वपूर्ण कारण यह था कि सोवियत सत्ता साम्राज्यवादी देशों के मजदूरों-किसानों समेत सारी दुनिया के शोषित-उत्पीड़ित जनों के लिए प्रेरणा स्रोत बनती थी। इसीलिए इसको खत्म किया जाना जरूरी था।

इस उद्देश्य से ब्रिटेन, फ्रांस, अमेरिका और जापान ने रूस के अलग-अलग हिस्सों में अपना सैनिक हस्तक्षेप शुरू कर दिया। इसके लिए उन्होंने देश के भीतर के कज्जाकों के ऊपरी हिस्सों और कुलकों का इस्तेमाल किया। राजनीतिक तौर पर मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों ने उनका साथ दिया। जहां रूस के भीतर की क्रांति विरोधी शक्तियों ने प्रतिक्रांति के लिए लड़ने वाले जुटाये वहीं साम्राज्यवदियों ने युद्ध सामग्री और पैसा उपलब्ध कराया। मौका देख कर जर्मनी ने भी अपने सटे हुए हिस्सों में यही खेल शुरू कर दिया हालांकि उसने रूस से शान्ति संधि कर रखी थी। स्वभावतः ही जर्मन साम्राज्यवादी भी रूस की सोवियत सत्ता के उतने ही बड़े दुश्मन थे।

इस साम्राज्यवादी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध की शुरुआत के साथ ही सोवियत क्रांति को जो शांति की मोहलत मिली थी, वह समाप्त हो गयी। एक भीषण युद्ध शुरू हो गया जो अलग-अलग मोर्चों पर करीब तीन साल तक चलता रहा। इन सालों में सोवियत सत्ता का सारा ध्यान इस पर केन्द्रित हो गया । यह सोवियत सत्ता के अस्तित्व का सवाल था। पहले से युद्ध जर्जर देश में यह बेहद मुश्किल चुनौती थी पर सोवियत सत्ता ने इसका उतनी ही बहादुरी से सामना किया।

विदेशी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध के इस काल में सारी अर्थव्यवस्था को इसकी ओर उन्मुख कर दिया गया। इसीलिए इस काल में सोवियत अर्थव्यवस्था ने जो रूप ग्रहण किया उसे युद्धकालीन कम्युनिज्म कहा गया। विदेशी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध से निपटने के लिए सोवियत सत्ता ने पहले दस लाख की लाल सेना गठित करने का फैसला किया जिसे बाद में तीस लाख तक बढ़ा दिया गया। पहले से युद्ध जर्जर देश में इतनी विशाल सेना के लिए कुमक और रसद मुहय्या करना आसान नहीं था। इसके लिए आपात कदमों की अवश्यकता थी और वे उठाये गये। ये आपातकालीन कदम ही युद्धकालीन कम्युनिज्म के प्रमुख घटक थे।

अक्टूबर क्रांति के तुरंत बाद केवल बड़े उद्योग धन्धों का ही राष्ट्रीयकरण किया गया था। अब सोवियत सरकार ने मध्यम और छोटे उद्योग-धंधे भी अपने अधिकार में कर लिये। इसने अनाज के व्यापार पर इजारेदारी कायम की और किसानों के पास मौजूद अतिरिक्त अनाज जब्त करने की व्यवस्था लागू की। इसके तहत किसानों के पास मौजूद अतिरिक्त अनाज को सोवियत राज्य निश्चित दाम पर खरीद लेता था। कोई भी किसान अतिरिक्त अनाज बेचने से इंकार नहीं कर सकता था। इसके साथ ही सभी वर्गों के लोगों के लिए अनिवार्य श्रम सेवा लागू की गई। इसके तहत पूंजीपति वर्ग के लोगों को शारीरिक श्रम में लगाया गया। इससे मोर्चे पर भेजने के लिए ज्यादा लोग उपलब्ध हुए।

चूंकि अनाज की भारी किल्लत थी इसीलिए उत्पादक किसानों से लेकर युद्ध के मोर्चे तक राशन की सख्त व्यवस्था लागू की गई। इसी तरह अन्य उपभोक्ता सामग्रियों के वितरण पर भी नियंत्रण कायम किया गया। परिणाम स्वरूप लगभग सारा वितरण राज्य के नियंत्रण में आ गया। इसमें सेंध लगाने वाले काला बाजारियों से निपटने के लिए सख्त कानून बनाये गये।

इन अस्थायी और आपातकालीन कदमों ने कुछ लोगों के बीच यह भ्रम पैदा किया कि इनके जरिये सीधे कम्युनिज्म की ओर जाया जा सकता है। पर जैसे ही गृहयुद्ध की विभीषिका से मुक्ति मिली, यह पाया गया कि न केवल इनके जरिये कम्युनिज्म में नहीं जाया जा सकता बल्कि इसके ठीक विपरीत इनसे पीछे हटना जरूरी है। यह बहुत कठिन था पर इसके अलावा कोई और रास्ता भी नहीं था। इस पीछे हटने ने नयी आर्थिक नीति का रूप लिया।

युद्धकालीन कम्युनिज्म के इसी काल में ही मध्यम किसानों के प्रति बोल्शेविक पार्टी की कार्यनीति में एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ। सर्वहारा द्वारा सत्ता पर कब्जा करने के समय यह माना गया था कि मध्यम किसान ढुलमुल रहेगा इसलिए जरूरी है कि उसे तटस्थ किया जाये। मध्यम किसान एक ओर तो मेहनतकश होता है। लेकिन दूसरी ओर वह निजी सम्पत्ति से जुड़ा होता है और पूंजीवाद में तरक्की कर धनी किसान बन जाने के सपने पाले रहता है। इसी कारण सर्वहारा क्रांति के समय वह मजदूर वर्ग और पूंजीपति वर्ग के बीच झूलता रहता है। ऐसे में क्रांति के हित में यह जरूरी हो जाता है कि इसे पूंजीपति वर्ग की ओर जाने से रोका जाय और तटस्थ किया जाये।

लेकिन सर्वहारा क्रांति के बाद स्थिति बदल गई। एक ओर तो जमींदारों- जागीरदारों के खात्मे से इसे काफी फायदा हुआ, दूसरी ओर उसने देखा कि गृहयुद्ध में प्रतिक्रांतिकारियों की विजय उसे पुराने दिनों की ओर ले जाती है। ऐसे में गृहयुद्ध की सारी विभीषिका के बावजूद सोवियत सत्ता में उसका विश्वास बढ़ा। इस तरह मध्यम किसान के साथ मजदूर वर्ग के एक स्थाई संश्रय का आधार पैदा हुआ। ऐसे में मध्यम किसानों के प्रति तटस्थता की नीति को छोड़कर यह तय किया गया किं अब गरीब किसानों पर भरोसा करते हुए मध्यम किसानों से स्थाई संश्रय कायम किया जाये। अब से समाजवादी निर्माण की ओर बढ़ने के लिए मध्यम किसान के साथ मजदूर वर्ग के स्थाई संश्रय को जरूरी शर्त माना गया। नयी आर्थिक नीति में मध्यम किसानों के साथ यह स्थाई संश्रय एक महत्वपूर्ण घटक था। रूस की विशाल देहाती आबादी में अब मध्यम किसान बहुमत में थे।

गृहयुद्ध के कठिन दौर में ही सोवियत रूस में सर्वहारा अधिनायकत्व और ज्यादा दृढ़ता से स्थापित हो गया। क्रांति के बाद केवल बुर्जुआ पार्टियों को ही प्रतिबंधित किया गया था और बुर्जुआ वर्ग के सदस्यों को मताधिकार से वंचित किया गया था। वस्तुतः क्रांति के कुछ समय बाद तक बुर्जुआ अखबार निकलते रहे थे। जहां तक मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की बात है वे सक्रिय रहे और उनके अखबार-साहित्य निकलते रहे। वामपंथी समाजवादी क्रांतिकारी तो कुछ समय तक सोवियत सरकार में भी रहे। पर गृहयुद्ध के दौरान इनका सोवियत सरकार विरोधी रुख तीखा होता गया और वे प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर प्रतिक्रिांतिकारियों के सहयोगी बन गये। गृहयुद्ध के दौरान कई जगहों पर इन्होंने सोवियत सरकार को उखाड़ कर अपनी सरकार भी कायम की। समाजवादी क्रांतिकारी खुले तौर पर तोड़-फोड़ और हत्या तक की गतिविधियों में शामिल हो गये। इन्होंने कई प्रमुख बोल्शेविक नेताओं की हत्याएं कीं। हत्या का एक प्रयास लेनिन पर भी हुआ जिसमें लगी एक गोली के संक्रमण से ही अंततः 1924 में उनकी मृत्यु हुई।

सोवियत सरकार ने मेंशेविकों और समाजवादी क्रांतिकारियों की इन आपराधिक और प्रतिक्रांतिकारी गतिविधियों का सख्ती से दमन किया। जब तक वे एक वैधानिक विपक्ष की तरह काम करते रहे तब तक सोवियत सत्ता के खिलाफ उनके सारे दुष्प्रचार के बावजूद उनका दमन नहीं किया गया। वे सोवियतों में बने रहे और सक्रिय रहे। लेकिन अब स्थिति भिन्न हो चुकी थी। अब वे प्रतिक्रांतिकारियों की पातों में शामिल हो गये थे। अब क्रांति उनके साथ नरमी से पेश नहीं आ सकती थी।

सोवियत समाज में हाशिये पर जा चुके ये पेटी बुर्जुआ समाजवादी, जिन्होंने हर हमेशा बुर्जुआ वर्ग का ही साथ दिया था, सर्वहारा अधिनायकत्व की कठोर कार्रवाईयों के सामने टिक नहीं सके। उनके ज्यादातर नेताओं ने विदेशों का रुख किया जहां पुराने अभिजात व बुर्जुआ वर्ग तथा उनके नेता पहले ही शरण ले चुके थे। वहां से उन्होंने अंतर्राष्ट्रीय बुर्जुआ वर्ग के सहयोग से सोवियत सत्ता और बोल्शेविक पार्टी के खिलाफ हर तरह का दुष्प्रचार जारी रखा। अब ये पेटी बुर्जुआ समाजवादी खुलेआम बुर्जुआ वर्ग के बगलगीर बन गये तथा साम्राज्यवादियों के एजेण्ट। सफेद गार्डों के अफसरों समेत इन सबकी संख्या करीब बीस लाख बनती थी ये बीसियों दैनिक अखबार निकालते थे और सोवियत रूस के भीतर हर विकास पर बारीक नजर रखते हुए उसके खिलाफ धुआंधार दुष्प्रचार करते थे।

इस तरह गृहयुद्ध के दौरान न केवल साम्राज्यवादियों और प्रतिक्रांतिकारियों को पराजित किया गया बल्कि एक तरह से सोवियत रूस की सफाई भी हो गई। सारे प्रतिक्रांतिकारी और क्रांति विरोधी रूस छोड़ कर विदेशों में जा बसे। जो बचे उन्होंने सर्वहारा अधिनायकत्व को स्वीकार करने में ही अपनी भलाई समझी। हालांकि इनकी तोड़फोड़ की छिपी हुई गतिविधियां 1930 के दशक तक जारी रहीं पर अब वे सर्वहारा अधिनायकत्व के लिए कोई बड़ी चुनौती पेश नहीं करती थीं।

सोवियत रूस में सर्वहारा अधिनायकत्व के सुदृढ़ीकरण का यह इतिहास दिखाता है कि क्रांति की दृढ़ता से रक्षा और उसे आगे बढ़ाने के प्रयास ने खुद ही क्रांति विरोधियों और प्रतिक्रांतिकारियों को ठिकाने लगा दिया। सोवियत सत्ता ने इनसे केवल इतनी मांग की थी कि वे सोवियत सत्ता को स्वीकार करें जिसे मजदूर वर्ग और मेहनतकश किसानों के अत्यधिक बहुलांश का समर्थन हासिल था। पर ऐसा करने के बदले उन्होंने क्रांति को नष्ट करने का रास्ता पकड़ा और स्वयं को नष्ट कर लिया। नयी सोवियत सत्ता स्वयं को नष्ट होने

देने की कीमत पर ही इन्हें मनचाहा करने की छूट दे सकती थी। कोई भी क्रांतिकारी सरकार ऐसा नहीं कर सकती थी और सोवियत सरकार ने भी ऐसा नहीं किया। बोल्शेविक पार्टी ने सर्वहारा अधिनायकत्व के बारे में इतिहास से सबक यूं ही नहीं सीखा था।

सोवियत रूस में सर्वहारा अधिनायकत्व की इस परिणति का यह परिणाम निकला कि गृहयुद्ध की समाप्ति के बाद सोवियत राजनीति में केवल बोल्शेविक पार्टी ही रह गई। यह एक वस्तुस्थिति थी जिसे पहले किसी ने चाहा नहीं था। लेकिन अब यह हकीकत थी। वक्त के साथ इसी ने वैधानिक स्थिति भी ग्रहण कर ली क्योंकि यह स्पष्ट होता गया कि सर्वहारा अधिनायकत्व किसी और रूप में नहीं साकार हो सकता। बुर्जुआ लोकतंत्र की बहुदलीय व्यवस्था का इसमें कोई औचित्य नहीं था।

# III
# नयी आर्थिक नीति

जब सोवियत रूस ने विदेशी हस्तक्षेप और गृहयुद्ध से मुक्ति पाई तो सोवियत सत्ता के सामने विकट आर्थिक हालात मुंह बाये खड़े थे। हालात अब 1918 से भी बहुत ज्यादा बिगड़ गये थे। अब तक देश चार साल के साम्राज्यवादी विश्व युद्ध और तीन साल के गृहयुद्ध से गुजर चुका था।

अर्थव्यवस्था के बद से बदतर हालात का पता इस आंकड़ों से चलता है। 1920 में खेती की कुल पैदावार युद्ध के पहले की केवल आधी रह गई थी। उद्योग धंधों की पैदावार युद्ध के पहले का सातवां हिस्सा ही रह गई थी। 1921 में कच्चे लोहे की उपज युद्ध के पहले का केवल 3 प्रतिशत थी। मिलें, कारखाने बन्द थे और खानों में पानी भर गया था।

इन आर्थिक हालात में मजदूर वर्ग और अन्य मेहनतकश आबादी के कष्टों का अंदाज लगाया जा सकता था। जब तक गृहयुद्ध चल रहा था तब तक जनता क्रांति को बचाने के लिए हर तरह के कष्ट सहती रही थी। पर अब जब गृह युद्ध समाप्त हो गया तो अभाव से पैदा हुआ असंतोष तेजी से फैला। यह असंतोष केवल मध्यम किसानों में ही नहीं बल्कि गरीब किसानों और मजदूर वर्ग में भी था। मिलों, कारखानों और खदानों के बंद होने से मजदूर वर्ग का एक बड़ा हिस्सा बेरोजगार होकर भांति-भांति के धंधों में लग गया था और इस तरह वर्ग-च्युत हो रहा था।

मध्यम किसानों में असंतोष का बड़ा कारण उनकी अतिरिक्त उपज को सोवियत सत्ता द्वारा ले लिया जाना था। गृह युद्ध के दौरान तो वह इसे क्रांति की खातिर स्वीकार करता रहा पर अब वह इसका प्रतिकार करने लगा। कुलक इसका फायदा उठाने लगे और मध्यम किसानों को सोवियत सत्ता के खिलाफ भड़काने लगे। मजदूर वर्ग के साथ मध्यम किसानों का स्थाई संश्रय खतरे में पड़ने लगा। इसी के साथ शहर और देहात के बीच संबंध भी खतरे में पड़ने लगा।

ऐसे में इस तात्कालिक स्थिति से निपटने के लिए लेनिन ने नयी आर्थिक नीति का प्रस्ताव रखा। लेनिन ने इसकी राजनीतिक व्याख्या करते हुए कहा कि युद्धकालीन कम्युनिज्म के जमाने में हम शहर और देहात के पूंजीवादी तत्वों पर हमला करते हुए काफी आगे निकल गये थे। इसके चलते हमारा पृष्ठ भाग अरक्षित हो गया था। अब जरूरत इस बात की है कि थोड़ा पीछे हटकर इसे सुदृढ़ कर लिया जाये, रसद और कुमक जुटा ली जाये तथा फिर नये सिरे से हमला बोला जाये। इस तरह नयी आर्थिक नीति पीछे हटना तो थी पर यह हार के बाद का पीछे हटना नहीं थी। यह जीत के बाद पीछे हटना थी। इसमें जरूरी था कि बेतरतीब तरीके से नहीं बल्कि सुनियोजित तरीके से पीछे हटा जाये तथा स्थिति सुदृढ़ होते ही पीछे हटना रोक दिया जाये। वस्तुतः लेनिन ने एक साल बाद ही कहना शुरू कर दिया था कि अब हम काफी पीछे हट चुके हैं और अब पीछे हटना रोक देना चाहिए।

आर्थिक तौर पर देखें तो कृषि उत्पादन में वृद्धि, शहर और देहात अथवा उद्योग और कृषि के बीच व्यापार में वृद्धि, आम तौर पर व्यापार में वृद्धि तथा छोटे-मोटे उद्योग-धंधों का विकास इसके मुख्य पहलू थे। कुल मिलाकर उद्देश्य यहथा कि अर्थव्यवस्था में गति पैदा हो।

खेती के मामले में तय किया गया कि अब किसानों से अतिरिक्त उपज का एक हिस्सा ही कर के रूप में सरकार द्वारा लिया जायेगा। शेष हिस्सा किसान अपनी मर्जी से बेच सकेगा। कर की मात्रा हर साल बुवाई के पहले बता दी जायेगी तथा कर अदा करने की तारीख भी।

किसान को अपने अतिरिक्त उत्पाद के एक हिस्से को अपनी मर्जी से बेचने की जो छूट मिली वह व्यवहार में परिणत हो उसके लिए जरूरी था कि खेती में उपयोग होने वाले उद्योग के उत्पादों की पर्याप्त मात्रा उपलब्ध हो। सोवियत सत्ता के नियंत्रण वाले बड़े उद्योगों के अलावा अब इसके लिए छोटे कारखानेदारों को भी छोटे-छोटे धंधे करने की छूट दी गई। इसी तरह व्यक्तिगत व्यापार को भी इजाजत दी गई।

सोवियत रूस में इस समय विशाल पैमाने पर छोटी निजी सम्पत्ति मौजूद थी, खासकर खेती में। जागीरदारियों-जमींदारियों के खात्मे के बाद इसमें इजाफा ही हुआ था। (सोवियत रूस के देहातों में अब मध्यम किसान बहुसंख्या में थे) इस छोटी निजी सम्पत्ति का सोवियत सत्ता अधिग्रहण नहीं कर सकती थी जैसे बड़ी पूंजीवादी सम्पत्ति का किया था। इसे तो एकदम भिन्न तरीके से ही समाजवादी व्यवस्था में समाहित किया जा सकता था- क्रमशः सहकारीकरण और सामूहिकीकरण के जरिये। लेकिन इस दिशा में बढ़ा जाये इसके लिए जरूरी था कि पहले छोटी निजी सम्पत्ति के सामान्य पूंजीवादी संबंध बहाल हों। गृहयुद्ध के काल में युद्ध जनित अव्यवस्था तथा सोवियत सत्ता द्वारा युद्ध कम्युनिज्म के तहत अतिरिक्त उत्पाद का अधिग्रहण और वितरण ऐसे संबंध थे जो आपातकालीन थे। इनकी वजह से किसानों ने उत्पादन भी काफी कम करना शुरू कर दिया था क्योंकि अतिरिक्त उत्पादन पर उनका कोई अधिकार नहीं था। अब

आगे बढ़ा जाये इसके पहले छोटी छोटी निजी सम्पत्ति के सामान्य पूंजीवादी संबंध बहाल करने जरूरी थे। किसानों को छूट दी जानी थी जिससे वे अपने अतिरिक्त उत्पाद से खरीद-बेच कर सकें। वे उद्योग से खरीद-बेच के संबंध स्थापित कर सकें।

उद्योग की एकदम खस्ताहाल स्थिति को देखते हुए भी उसमें भी निजी सम्पत्ति को छूट दिया जाना जरूरी था। इसी तरह व्यापार में भी। स्वभावतः ही सार्वजनिक उद्यमों के प्रबन्धन में भी निजी पूंजीवादी संबंधों को कुछ छूट मिलनी थी- एक व्यक्ति की प्रबन्धन प्रणाली, मुनाफे का मापदंड तथा प्रतियोगिता।

इन सब कदमों का स्पष्ट मतलब था कि निजी पूंजीवाद को छूट दी जा रही थी। भविष्य में इसे बढ़ावा मिलने वाला था। खासकर देहाती कुलकों और व्यापारियों व मुनाफाखोरों को। पर सोवियत सत्ता को इससे विशेष खतरा नहीं था क्योंकि अर्थव्यवस्था की मुख्य कमान उसके हाथ में थी। बैंक, रेलवे तथा सभी बड़े कारखाने और खदानें सोवियत राज्य की सम्पत्ति थीं। निजी पूंजीवाद से खतरा था तो वह इस तथ्य में कि छोटी बिखरी हुई निजी सम्पत्ति की तादाद बहुत ज्यादा थी।

नयी आर्थिक नीति का बोल्शेविक पार्टी के एक धड़े द्वारा विरोध किया गया। यह इस नीति को पूंजीवाद की ओर वापसी के रूप में देखता था। वह स्वयं यह चाहता था कि युद्धकालीन कम्युनिज्म की दिशा में और आगे बढ़ा जाये।

लेकिन पार्टी के भीतर का एक अन्य हिस्सा इसे केवल पीछे हटने के रूप में ही लेता था। वह लेनिन के इस कथन को भूल जाता था कि नयी आर्थिक नीति वाला रूस समाजवादी रूस बन जायेगा। व्यवहारतः ये लोग इस नीति को हमेशा के लिए लागू रखना चाहते थे, जिसका मतलब होता पूंजीवाद की बहाली।

पर जैसा कि पहले कहा गया है लेनिन के लिए नयी आर्थिक नीति का एकदम भिन्न मतलब था। यह जीत की अवस्था में योजनाबद्ध ढंग से थोड़ा पीछे हटना था जिससे फिर पूंजीवाद पर धावा बोला जा सके। वस्तुतः एक साल बाद ही पीछे हटना रोक दिया गया और फिर कुछ साल बाद धावा शुरू हो गया।

नयी आर्थिक नीति के तहत पीछे हटकर अर्थव्यवस्था को पुनर्संगठित करने के इस दौर में मजदूर वर्ग के संगठन और अर्थव्यवस्था के संचालन में उसकी भागेदारी को लेकर पार्टी के भीतर एक गंभीर विवाद पैदा हो गया। इस विवाद में भांति-भांति के धड़े पैदा हो गये और वे भांति-भांति की बातें करने लगे।

ट्राट्स्कीपंथियों का कहना था कि मजदूर वर्ग की ट्रेड-यूनियनों को ऊपर से गठित किया जाना चाहिए और उन्हें फौजी तरीकों से संचालित किया जाना चाहिए। वे मजदूर ट्रेड-यूनियनों के सोवियत सत्ता से अलग स्वतंत्र अस्तित्व तथा उनमें समझाने-बुझाने के तरीके के खिलाफ थे। उनके अनुसार ट्रेड-यूनियनों को सोवियत सत्ता के निर्देश पर चलना चाहिए और उत्पादन को सुचारु रूप से संचालित करने में अपनी भूमिका निभानी चाहिए।

ट्राट्स्कीपंथियों द्वारा ट्रेड-यूनियनों के सरकारीकरण की मांग के ठीक विपरीत 'मजदूर विरोध' (वर्कर्स अपोजिशन) धड़े की मांग सोवियत सत्ता का ट्रेडयूनियनीकरण थी। उनके अनुसार समूची अर्थव्यवस्था का संचालन उत्पादकों की एक अखिल रूसी कांग्रेस को सौंप दिया जाना चाहिए। छोटी सम्पत्ति वाले उत्पादकों की बहुसंख्या वाले देश में इस मांग की विचित्रता के अलावा इसका मूल तत्व था अराजकतावादी-संघाधिपत्यवादी भटकाव। यह पेटी बुर्जुआ बहुलता वाले देश में मजदूर वर्ग पर उसके प्रभाव का परिणाम थी।

इन सबके विरुद्ध लेनिन का कहना था कि ट्रेड-यूनियनें शासन का स्कूल, प्रबंधन का स्कूल तथा कम्युनिज्म का स्कूल हैं। इन्हें जनवादी तरीके से गठित किया जाना चाहिए। ट्रेड यूनियनें समाजवादी अर्थव्यवस्था के संचालन तथा समाजवाद के निर्माण में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका अदा करेंगी। लेकिन तब भी यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि वे सोवियत सत्ता से अलग हैं और उन्हें अपने सदस्यों के हितों का ध्यान रखना चाहिए। ट्रेड-यूनियनों की सोवियत सत्ता के संदर्भ में यह अंतर्विरोध पूर्ण स्थिति उन्हें सोवियत राज के दायरे में अपने सदस्यों की खातिर आंदोलनों और हड़ताल तक ले जा सकती है।

सोवियत रूस में मजदूर वर्ग ही शासक वर्ग था। अब उसकी ही पार्टी में उसकी भूमिका को लेकर मचे इस तीखे विवाद ने विकट स्थिति पैदा कर दी। यह तब और गंभीर था जब पार्टी गृह युद्ध की समाप्ति के बाद नयी आर्थिक नीति के तहत आर्थिक पुनर्संगठन की ओर बढ़ना चाहती थी। लेनिन ने इसे बेमतलब की ऐश बताया।

अंत में मार्च 1921 में आयोजित बोल्शेविक पार्टी की दसवीं कांग्रेस ने इस बहस का निपटारा किया। इसने लेनिन की लाइन को स्वीकार किया। इसने केवल इतना ही नहीं किया। उसने इस तरह की अनर्गल बहसों को रोकने के लिए तथा पार्टी को बहसबाजों की संस्था बनने से बचाने के लिए तय किया कि बहसें तभी की जायेंगी जब पार्टी कांफ्रेंस या पार्टी कांग्रेस से पहले केन्द्रीय समिति बहस जारी करेगी। तब तक सभी को पुराने फैसलों के अनुरूप चलना होगा। इस कांग्रेस ने पार्टी के भीतर धड़ेबंदी पर पूरी तरह प्रतिबंध लगा दिया। गुटबाजी करने पर इसका दंड निष्कासन तक हो सकता था। पहले की नीति से अलग हटते हुए यह तय किया गया कि यह नियम यानी पार्टी से निष्कासन का नियम (अथवा कम दंड के तौर पर केन्द्रीय समिति से निष्कासन) अब से केन्द्रीय समिति के सदस्यों पर भी लागू होगा। इस मामले में गलती या अतिरेक से बचने के लिए तय किया गया कि केन्द्रीय समिति के सदस्यों पर फैसला केन्द्रीय समिति के सभी सदस्यों (पूर्ण व वैकल्पिक दोनों) तथा केन्द्रीय नियंत्रण आयोग के सदस्यों की सामूहिक बैठक के दो तिहाई से ही किया जा सकेगा।

जैसा कि पहले कहा गया है, जारकालीन रूस विभिन्न राष्ट्रीयताओं का जेलखाना था। अक्टूबर क्रांति ने अलग होने सहित आत्मनिर्णय का अधिकार देकर इन्हें मुक्त कर दिया।

यह स्वाभाविक ही था कि अक्टूबर क्रांति जैसी विश्व-ऐतिहासिक महत्व की इस घटना का इन पहले की उत्पीड़ित राष्ट्रीयताओं पर भी असर पड़ता। इन राष्ट्रीयताओं में भी क्रमशः क्रांतियां हुई और सोवियत सरकारें कायम हुई। इन राष्ट्रीयताओं की कम्युनिस्ट पार्टियों से रूसी कम्युनिस्ट पार्टी के पहले से ही नजदीकी और घनिष्ठ संबंध थे।

अब जरूरत इस बात की पैदा हुई इन सभी सोवियत गणतंत्रों को एक सूत्र में गूंथा जाये, सभी सोवियत राष्ट्रीयताओं को एक स्वैच्छिक संघ में गठित किया जाये। यह सभी के विकास का सबसे अच्छा रास्ता पाया गया।

परम्परागत तौर पर कम्युनिस्ट संघीय ढांचे के बदले केन्द्रीयकृत ढांचे के पक्षधर रहे हैं। इसीलिए सभी राष्ट्रीयताओं के एक संघ के नतीजे पर पहुंचना आसान नहीं था। पर अनुभव ने दिखाया कि राष्ट्रीयताओं के मामले में यही सबसे अच्छा रास्ता था।

रूसी समाजवादी गणतंत्र पहले ही अपने भीतर विभिन्न तरह की राष्ट्रीयताओं के विकास के लिए स्वायत्तता से लेकर अन्य तरह के प्रबंध कर चुका था। इनकी अपनी भाषा और संस्कृति के विकास के लिए सारे रास्ते खोले जा रहे थे। खासकर शिक्षा में मातृभाषा का प्रयोग जरूरी था।

अब जब राष्ट्रीय गणतंत्रों का एक संघ बनना था तो यह ध्यान रखना जरूरी था कि इसमें किसी तरह का राष्ट्रीय उत्पीड़न निहित न हो। खासकर लेनिन महान रूसी अंधराष्ट्रवाद के प्रति बहुत सचेत थे जो बोल्शेविक पार्टी के गैर रूसी लोगों में भी पाया जाता था।

दिसम्बर 1922 में सोवियतों की पहली अखिल संघीय कांग्रेस आयोजित  की गई। इसमें सोवियत राष्ट्रीयताओं का एक स्वैच्छिक संघ बनाने का फैसला किया गया जिसे सोवियत समाजवादी गणतंत्र संघ कहा गया। इस संघ में पहले रूसी सोवियत संघीय समाजवादी गणतंत्र, ट्रांस-काकेशियन सोवियत संघीय समाजवादी गणतंत्र, उक्रइनी सोवियत समाजवादी गणतंत्र तथा बेलोरूसी सोवियत समाजवादी गणतंत्र इसमें शामिल हुए। कुछ समय बाद मध्य एशिया के तीन गणराज्य इसमें शामिल हुए; उजबेक, तुर्कमान और ताजिक। [ बाद में ट्रांस-काकेशियन सोवियत संघीय समाजवादी गणतंत्र में शामिल तीनों जार्जिया, आरमीनिया और अजरबैजान स्वतंत्र रूप से सोवियत गणतंत्र का हिस्सा बने। मध्य एशिया के गणतंत्रों के पुनर्गठन से दो नये गणतंत्र और बने-कजाक और किरगिज। और भी बाद में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद इस्टोनियाई, लाटवियाई, लिथुवानियाई और मालदोवी गणतंत्र भी सोवियत संघ में शाामिल हुए। इस तरह 15 गणतंत्रों के संघ का सोवियत संघ अंततः अस्तित्व में आया।]

1924 की शुरुआत में अस्तित्व में आये सोवियत संघ में शामिल इन सभी गणतंत्रों को यह अधिकार था कि वे जब चाहें तब सोवियत संघ से अलग हो जायें। यह अधिकार इनके स्वेच्छा से संघ में शामिल होने का पूर्वाधार था। राष्ट्रीयताओं की समस्या का यह एक वास्तविक समाधान था। लेकिन यह इस बात का प्रमाण भी था कि केवल समाजवाद में ही यह समाधान संभव था।

# IV
# एक देश में समाजवाद के निर्माण का सवाल

1924-25 आते-आते आर्थिक पुनगर्संठन का काम लगभग पूरा हो गया। खेतीहर और औद्योगिक उत्पादन अब युद्ध के पहले की स्थिति के आस-पास पहुंचने लगे थे। यह सब नयी आर्थिक नीति के तहत हुआ था।

आर्थिक पुनगर्संठन लगभग पूरा हो जाने के साथ ही यह सवाल उठ खड़ा हुआ कि अब आगे की ओर कैसे बढ़ा जाये? क्या नयी आर्थिक नीति को जारी रखा जाये? आगे उद्योग और कृषि में क्या किया जाये?

इसी के साथ दूसरा सवाल भी जुड़ा हुआ था। 1922-23 तक यूरोपीय देशों में क्रांतिकारी उभार जारी था। पर अब अपेक्षाकृत स्थिरता का दौर आ गया था। अभी तक बोल्शेविक उम्मीद कर रहे थे कि यूरोप की क्रांति उनकी मदद के लिए आयेगी। उनके जैसे पिछड़े देश में विकसित पूंजीवादी देशों में क्रांति से समाजवाद का निर्माण आसान हो जायेगा। पर अब वहां हाल-फिलहाल क्रांति की संभावना न होने से अब यह उम्मीद नहीं की जा सकती थी।

फिर क्या किया जाये?

इस चुनौतीपूर्ण स्थिति में ट्राट्स्की अपना पुराना 'स्थाई क्रांति' का सिद्धान्त लेकर सामने आ गया। हालांकि यह कहना होगा कि वह पहले भी यह कर रहा था पर तब दूसरी समस्याओं के मुखर होने के कारण किसी ने उस पर ध्यान नहीं दिया था। अब यही समस्या ही प्रमुख समस्या बन गई थी।

1924 में इस मुद्दे पर गंभीर बहस के पहले ट्राट्स्की ने यह कहना शुरू किया था कि पुराने बोल्शेविक नेता दूसरे इंटरनेशनल के नेताओं की तरह जड़ हो गये हैं और क्रांति के रास्ते से दूर हो गये हैं। पार्टी मशीनरी इन नेताओं के साथ नौकरशाही में तब्दील हो चुकी है। उसने नौजवान पार्टी सदस्यों का आह्वान किया  कि वे इन पुराने बोल्शेविकों और पार्टी नौकरशाही के खिलाफ संघर्ष करें। गुटबाजी के खिलाफ दसवीं पार्टी कांग्रेस के निर्देशों को धता बताते हुए ट्राट्स्की और उसके समर्थकों ने इस बारे में एक वक्तव्य भी जारी किया। पर पार्टी कांफ्रेंस ने इनकी बातों को ठुकरा दिया और इनकी हरकतों के लिए इनकी मज़म्मत की।

अपनी इस उड़ान में असफल होने के बाद ट्राट्स्की 'स्थाई क्रांति' का अपना सिद्धान्त खुले तौर पर लेकर आया। यह सिद्धान्त उसने 1905 में ही पेश किया था। जैसा कि इस लेख के पहले हिस्से में बताया गया है, उसका सिद्धान्त बोल्शेविकों और मेंशेविकों दोनों के विरोध में था।

उसका कहना था कि रूस की आसन्न बुर्जुआ जनवादी क्रांति रूस में मजदूर राज कायम करेगी ( सारे किसान इसके विरोध में चले जायेंगे ) तथा यूरोप में क्रांति को प्रेरित करेगी। चूंकि रूस यूरोपीय प्रतिक्रियावाद का स्तंभ है इसलिए वहां क्रांति होते ही यूरोप में भी क्रांति शुरू हो जायेगी। यह यूरोपीय क्रांति तब रूसी क्रांति की मदद के लिए आयेगी और उसकी मदद से प्रतिक्रियावादी किसानों पर काबू पाते हुए रूस में समाजवाद का निर्माण होगा। यदि यूरोप में क्रांति नहीं होती तो रूसी क्रांति बुर्जुआ और पेटी-बुर्जुआ दोनों प्रतिक्रियावादियों के सामने टिक नहीं पायेगी। यूरोपीय क्रांति के अभाव में रूसी क्रांति का कोई भविष्य नहीं होगा। वह पतित होने के लिए या नष्ट होने के लिए अभिशप्त होगी।

इस थीसिस में यह निहित था कि एक अकेले देश में समाजवाद का निर्माण नहीं हो सकता। यह कम से कम यूरोप व्यापी क्रांति की मांग करता है जिसके बाद एक साथ सब जगह समाजवाद का निर्माण हो सकता था। ट्राट्स्की की यह सोच अब तक चली आ रही परम्परागत मार्क्सवादी धारणा के अनुरूप थी जिसे सबसे स्पष्ट रूप में एंगेल्स ने 1847 में 'कम्युनिज्म के सिद्धान्त' में सूत्रित किया था।

अब जबकि यूरोप व्यापी क्रांति की संभावना हाल-फिलहाल टल गई थी तब इसका व्यावहारिक निष्कर्ष केवल दो ही निकलता था : या तो यूरोपीय क्रांति के लिए सारा जोर लगा दिया जाय, या फिर उसके इंतजार में देश के भीतर दिशाहीन ढंग से कुछ करते रहा जाये। जहां पहला दुस्साहसवाद की ओर ले जाता था, वहीं दूसरा निष्क्रियता की ओर।

इस सवाल पर स्टालिन ने अपने को लेनिन पर आधारित करते हुए दूसरा निष्कर्ष निकाला। उन्होंने दृढ़ता पूर्वक कहा कि एक अकेले रूस में समाजवाद का निर्माण संभव है हालांकि बाहरी शत्रुओं से इसकी रक्षा के संदर्भ में इसकी अंतिम विजय तभी कही जा सकती है जब साम्राज्यवादी देशों में भी क्रांति हो जाये।

ऐसा नहीं था कि लेनिन-स्टालिन जैसे बोल्शेविक वैश्विक क्रांति के पक्षधर नहीं थे। ऐसा नहीं था कि वे अकेले रूस में समाजवाद का निर्माण करना चाहते थे समाजवाद के निर्माण के लिए सबसे उपयुक्त स्थिति वही होती-वैश्विक सर्वहारा मिलकर समाजवाद का निर्माण करता या कम से कम कुछ विकसित देशों का सर्वहारा मिलकर समाजवाद का निर्माण करता। जब रूस में बोल्शेविकों ने सत्ता पर कब्जा किया तो उन्हें उम्मीद थी उनकी पहल कदमी से फ्रांसीसी और जर्मन सर्वहारा को प्रेरणा मिलेगी तथा साम्राज्यवादी मोर्चा पूरब में ही नहीं पश्चिम में भी टूट जायेगा। लेनिन की रचनाओं में बार-बार इसका जिक्र मिलता है जिसका बाद में ट्राट्स्की ने हवाला दिया।

पर लेनिन एक दूसरी संभावना के प्रति सचेत थे। क्या होगा यदि क्रांति केवल एक देश तक सिमट जाती है? क्या होगा यदि क्रांति केवल रूस जैसे पिछड़े देश तक सिमट जाती है? पूंजीवाद की आधुनिक अवस्था यानी साम्राज्यवाद में विकास की असमान गति को देखते हुए इस बात की संभावना बनती है कि इसकी सबसे कमजोर कड़ी टूट जाये। ऐसे में क्या होगा?

लेनिन ने इस संभावना को देखा था और स्पष्ट रूप से रेखांकित किया था। उन्होंने कहा था कि इस संभावना को नकार कर अपने हाथ बांध लेना गलत होगा। प्रथम विश्व युद्ध और उसके बाद के विकास ने दिखाया कि साम्राज्यवाद के युग में यही संभावना ज्यादा बड़ी वास्तविकता थी। सर्वहारा क्रांतियों ने अब सभी या कई विकसित देशों में एक साथ क्रांति के बदले सबसे कमजोर कड़ी में क्रांति का रास्ता ग्रहण किया।

जहां तक इन देशों में समाजवाद के निर्माण का सवाल है, लेनिन ने बाद में इसका माकूल जवाब दिया। यदि समाजवाद के निर्माण के लिए एक निश्चित आर्थिक और सांस्कृतिक विकास की आवश्यकता है तो इसे पूंजीवाद के जिम्मे ही क्यों छोड़ा जाये? क्यों न सत्ता पर कब्जा कर पहले इस अवस्था को तेजी से हासिल किया जाये फिर समाजवाद का निर्माण किया जाये? क्यों इसे पूंजीवाद के बेहद कष्टकारी रास्ते के लिए छोड़ा जाये? कोई भी कहेगा कि यह कम्युनिस्टों द्वारा इच्छित नहीं है कि वे एक देश में अकेले समाजवाद का निर्माण करें। पर यदि देश और विश्व की परिस्थितियां उन्हें सत्ता पर कब्जा करने का अवसर प्रदान करें और इसके अलावा निजात का कोई रास्ता भी न हो तो फिर कम्युनिस्ट इस रास्ते पर क्यों न आगे बढ़ें?

इस तरह सबसे अनुकूल और सबसे इच्छित न होने के बावजूद एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण से इंकार नहीं किया जा सकता था। यह संभव था और वैश्विक क्रांति को आगे बढ़ाने का सबसे अच्छा रास्ता भी। ऐसा न करना वैश्विक क्रांति से गद्दारी होती।

ट्राट्स्की के स्थाई क्रांति के सिद्धान्त में गरीब और मध्यम किसानों के प्रति अविश्वास तो था ही साथ ही यह मजदूर वर्ग की ताकत में भी अविश्वास था। उसे विश्वास नहीं था कि रूस का सर्वहारा अकेले अपने दम पर समाजवाद का निर्माण कर सकता है जबकि रूस जैसे विशाल देश में प्राकृतिक संसाधनों की कोई कमी नहीं थी। उसे विश्वास नहीं था कि रूस का सर्वहारा विशाल गरीब और मध्यम किसान आबादी को समाजवाद के निर्माण के लिए गोलबंद कर सकता था। उसका विश्वास था कि किसान अपनी छोटी सम्पत्ति का मोह कभी नहीं छोड़ सकेंगे। इसीलिए वे सर्वहारा के दुश्मन होंगे और बुर्जुआ वर्ग का साथ देंगे। मध्यम किसानों के स्थाई संश्रय की लेनिन की लाइन औपचारिक तौर पर स्वीकार कर लेने के बाद भी वास्तव में वह उसे नहीं मानता था। अन्यथा वह 'स्थाई क्रांति' का अपना लेनिनवाद विरोधी सिद्धान्त फिर लेकर नहीं आता।

हालांकि जिनोवियेव और कामेनेव जैसे बोल्शेविक नेताओं ने शुरू में एक अकेले देश में समाजवाद के निर्माण को स्वीकार किया था पर जल्दी ही वे पलट गये। उन्होंने ट्राट्स्की की तर्ज पर इसके खिलाफ संघर्ष छेड़ दिया।

दिसंबर 1924 में आयोजित चौदहवीं पार्टी कांग्रेस ने अकेले सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण पर अपनी मुहर लगाई और कहा कि इसके लिए जरूरी हर चीज रूस में मौजूद है। इस कांग्रेस के बाद सोवियत संघ योजनाबद्ध ढंग से समाजवाद के निर्माण के रास्ते पर चल पड़ा।

# V
# समाजवादी औद्योगीकरण

सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण के सवाल के निर्णायक तौर पर हल हो जाने के बाद समाजवादी औद्योगीकरण की दिशा में दृढ़ कदम उठाये गये। इसके बिना आगे का चुनौतीपूर्ण काम यानी खेती का सामूहिकीकरण नहीं अंजाम दिया जा सकता था। सामूहिकीकरण के लिए जिन मशीनों और साधनों की जरूरत थी वे समाजवादी औद्योगीकरण के बिना उपलब्ध नहीं हो सकती थीं। यही नहीं इस दिशा में तेजी से कदम न उठाने पर कुलकों के प्रभाव में मजदूर वर्ग की मध्यम किसानों के साथ एकता भी खटाई में पड़ सकती थी। तब सोवियत सत्ता के लिए नये सिरे से खतरा पैदा हो जाता।

हालांकि नयी आर्थिक नीति के पिछले सालों में उद्योगों का पुनगर्संठन हो गया था पर उसकी कुछ प्रमुख खामियां थीं। ज्यादातर मिल और कारखाने पुराने थे और उनकी मशीनें घिसी-पिटी थीं। उन्हें ठोंक-पीटकर चालू तो कर दिया गया था पर उनका समय पूरा हो गया था। नयी मशीनों से लैस नये कारखानों की सख्त आवश्यकता थी। इसके साथ यह भी था मशीन निर्माण के कारखाने न के बराबर थे। पहले मशीनों का बाहर से आयात होता रहा था। अब समाजवादी देश यह नहीं कर सकता था। इसलिए मशीनें बनाने वाली मशीनों का निर्माण प्राथमिकता में आ गया था। इसका एक पहलू यह भी था कि देश में भारी उद्योगों का अपेक्षाकृत अभाव था। जो उद्योग-धंधे चालू थे वे हल्के ही थे। भारी उद्योगों के बिना देश का सही मायने में औद्योगीकरण नहीं हो सकता था।

समाजवादी औद्योगीकरण में उद्योगों की इन समस्याओं को हल करना था और उसे एक नयी जमीन पर खड़ा करना था। सोवियत संघ को एक पिछड़े खेतिहर देश से विकसित औद्योगिक देश बनाना था। यह गौरतलब है कि 1925 में भी सोवियत संघ में औद्योगिक उत्पादन कुल उत्पादन का एक चौथाई ही था। शेष उत्पादन खेती से आता था।

इतने विशाल पैमाने के औद्योगीकरण के लिए संसाधनों का सवाल एक महत्वपूर्ण सवाल था। पहले जिन देशों ने अपना औद्योगीकरण किया था उन्होंने अक्सर ही यह विदेशी धन के बल पर किया था। यह धन या तो उपनिवेशों की लूट से आया था या फिर हराई हुई राष्ट्रीयताओं से हर्जाना वसूल कर। एक अन्य रास्ता विदेशों से कर्ज का भी था। सोवियत संघ इनमें से कोई भी रास्ता नहीं अपना सकता था। पहले दोनों रास्ते तो इसके समाजवादी चरित्र के कारण निषिद्ध थे। तीसरा रास्ता साम्राज्यवादियों ने बन्द कर रखा था।

यहां यह गौरतलब है कि बहुत पहले से ही यानी गृहयुद्ध के समय से ही सोवियत रूस विदेशी पूंजीपतियों को अपने यहां आकर कारखाने खोलने, खदानें चलाने और जंगल काटने का प्रस्ताव देता रहा था। लेनिन का विचार था कि सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत सीमित मात्रा में इसे छूट देने से नुकसान के बदले फायदा ही होगा। इससे एक तो साम्राज्यवादियों की आपसी फूट का फायदा उठाने का मौका मिलेगा, दूसरे अर्थव्यवस्था में कुछ जान आयेगी। पर साम्राज्यवादी पूंजीपति सोवियत क्रांति और सोवियत सत्ता से इतने भयभीत थे कि इस दिशा में कोई उल्लेखनीय प्रगति नहीं हुई। उनका ऐसा सोचना अकारण नहीं था। जो क्रांति जारशाही के विदेशी कर्जों के भुगतान से इंकार कर चुकी थी और देश के भीतर मौजूद विदेशी पूंजी को जब्त कर चुकी थी, उससे डरना स्वाभाविक था।

पहले विकसित पूंजीवादी देशों ने अपने औद्योगीकरण के लिए देहातों और खेती का बेतहाशा दोहन किया था। इंग्लैण्ड के पूंजीवाद का शुरुआती काल-आदिम पूंजी संचय का काल- तो इस मामले में बेमिसाल था। सोवियत समाजवादी सत्ता यह नहीं कर सकती थी। वह गरीब और मध्यम किसानों की बेतहाशा तबाही की कीमत पर समाजवादी औद्योगीकरण नहीं कर सकती थी। हां, जमींदारों के लगान के बोझ से क्रांति ने उन्हें मुक्ति दिलाई थी, और उस लगान का एक हिस्सा वे समाजवादी औद्योगीकरण के लिए दे सकते थे।

सोवियत संघ में समाजवादी औद्योगीकरण के लिए संसाधन अंदरूनी तौर पर ही जुटाये गये। सोवियत राज्य ने फैक्ट्रियों, रेलवे, बैंकों, खदानों, विदेश व्यापार इत्यादि को अपने हाथ में ले लिया था। उनसे यह संभव हुआ कि किफायत से खर्च कर औद्योगीकरण के लिए पैसा बचाया जाये। किसानों से कर के रूप में भी कुछ पैसा हासिल किया गया। एक बार औद्योगीकरण के गति पकड़ लेने पर फिर उसी से इसके लिए अधिशेष हासिल होने लगा। 1926-27 में जहां एक अरब रूबल उद्योग-धंधों में लगाये गये थे। वहीं तीन साल बाद यह राशि पांच अरब रूबल तक पहुंच गई थी।

समाजवादी औद्योगीकरण में तेज प्रगति हुई और 1927 के अंत तक देश के कुल उत्पादन में औद्योगिक उत्पादन का हिस्सा 42 प्रतिशत हो चुका था। उद्योग-धंधों में समाजवादी क्षेत्र तेजी से बढ़ रहा था जबकि निजी क्षेत्र घट रहा था। 1924-25 से 1926-27 के दो सालों में समाजवादी क्षेत्र 81 प्रतिशत से बढ़कर 86 प्रतिशत हो गया जबकि निजी क्षेत्र सिकुड़कर 19 से 14 प्रतिशत रह गया। बड़े पैमाने के उद्योग में 1927 में कुल 18 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

उद्योग के इस विकास के समान्तर व्यापार के क्षेत्र में भी निजी क्षेत्र में कमी आई। खुदरा व्यापार में निजी क्षेत्र का हिस्सा 1924-25 के 42 प्रतिशत से गिरकर 1926-27 में 32 प्रतिशत रह गया। थोक व्यापार में यह पहले के 9 प्रतिशत से नीचे गिरकर अब केवल 5 प्रतिशत रह गया।

समाजवादी औद्योगीकरण की यह प्रगति आगे भी जारी रही। 1929-30 में देश की कुल उपज का 53 प्रतिशत हिस्सा उद्योग से आया था जबकि केवल 47 प्रतिशत हिस्सा कृषि से। 1926-27 में उद्योग की उपज युद्ध पूर्व उत्पादन का 102.5 प्रतिशत थी जो अब बढ़कर 1929-30 में 180 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। हालांकि सोवियत संघ अभी भी विकसित पूंजीवादी देशों से औद्योगीकरण में अभी बहुत पीछे था तो भी वह तेजी से आगे बढ़ रहा था।

साम्राज्यवादी युद्ध और गृहयुद्ध की तबाहियों के बाद अर्थव्यवस्था का पुनगर्संठन होते ही समाजवादी औद्योगीकरण में यह तेज प्रगति सर्वहारा वर्ग की महान रचनाशीलता और समाजवादी व्यवस्था की अतीव श्रेष्ठता का ही प्रमाण थी। किसी भी पूंजीवादी देश से इस तरह की प्रगति की उम्मीद नहीं की जा सकती थी।

# VI
# खेती का सामूहिकीकरण

गृहयुद्ध की सामाप्ति पर शहर और देहात के बीच, उद्योग और कृषि के बीच के सम्बन्ध विच्छिन्न हो चुके थे। गृहयुद्ध की भीषण परिस्थितियों में सोवियत सत्ता किसानों से समूचा अतिरिक्त अनाज ले लेती थी जबकि बदले में उन्हें कुछ नहीं मिलता था। यदि किसान (जिसमें मध्यम किसान बहुमत में थे) इस स्थिति को बर्दाश्त कर रहे थे तो इसलिए कि वे सोवियत सत्ता के समर्थक थे और उन्हें पता था कि सोवियत सत्ता के पराजित होने का मतलब पुरानी जारशाही के दिनों की, जमींदारों- जागीरदारों के दिनों की वापसी होगी।

सामान्य तौर पर शहर और देहात के बीच, उद्योग और कृषि के बीच संबंध व्यापार के होते हैं। खेती में जो आगतें होती हैं उनमें से ज्यादातर उद्योग में पैदा होती हैं जबकि उद्योगों को कृषि से कई कच्चे माल मिलते हैं। इसके साथ शहरी आबादी को खेती से अनाज एवं अन्य वस्तुएं मिलती हैं जबकि देहाती आबादी को कई तरह के उपभोक्ता सामान। देश में आम पूंजीवादी विकास और खासकर खेती के पूंजीवादी विकास के साथ यह आदान-प्रदान बढ़ता चला जाता है।

पूंजीवाद में इस आदान-प्रदान का व्यापार के अलावा कोई तरीका नहीं होता। खरीद बेच के जरिये ही यह आदान-प्रदान सम्पन्न होता है। पूंजीवाद में इसके चरित्र के अनुरूप ही यह आदान-प्रदान दोनों पक्षों के लिए जरूरी होने के बावजूद दोनों के लिए एक समान रूप से लाभप्रद नहीं होता है। पूंजीवाद में आमतौर पर उद्योग कृषि का शोषण करता है। इसके अलावा ढेरों अन्य पूंजीवादी मुनाफाखोर किसानों को निचोड़ते हैं और छोटे-मझोले किसानों को तबाही की ओर ढकेलते हैं। मुट्ठीभर धनी किसान या कुलक भी इससे फायदा उठाते हैं।

सोवियत रूस में गृहयुद्ध के दौरान उद्योग और खेती के बीच जो सम्बन्ध समाप्त हो गया था उसे फिर स्थापित करना जरूरी था। इसके लिए बिना अर्थव्यवस्था अपने पैरों पर खड़ी नहीं हो सकती थी और समाजवादी निर्माण की और नहीं बढ़ा जा सकता था। नयी आर्थिक नीति का एक प्रमुख लक्ष्य इस सम्बन्ध को बहाल करना था। इसलिए यह तय किया गया कि सोवियत सत्ता किसानों की उपज का केवल एक हिस्सा कर के रूप में लेगी और बाकी को वे अपनी मर्जी से बेच सकेंगे।

किसान औद्योगिक मालों के साथ अपने उत्पाद का विनिमय कर सकें इसके लिए जरूरी था कि उद्योग उनके लायक माल पैदा करें। इसके लिए हल्के सरकारी उद्योगों के साथ निजी उद्योग धंधों को भी प्रोत्साहित किया गया।

अब नयी आर्थिक नीति के तहत जब किसानों ने देखा कि वे अपनी अतिरिक्त उपज को अपने हिसाब से खरीद-बेच सकते हैं तो उन्हें अपनी पैदावार बढ़ाने का प्रोत्साहन मिला। गृहयुद्ध के दौरान सोवियत सत्ता द्वारा सम्पूर्ण अतिरिक्त उपज का अधिग्रहण उन्हें ज्यादा पैदा करने को प्रोत्साहित नहीं करता था। अब गृहयुद्ध की कठिन स्थितियों की समाप्ति तथा कृषि आगतों की अधिकाधिक उपलब्धता ने भी उन्हें उत्पादन बढ़ाने में मदद की। कृषि उत्पादन में तेजी से वृद्धि हुई और 1925 तक खेती का उत्पादन युद्ध पूर्व के स्तर को छूने लगा था हालांकि अनाज उत्पादन अभी पहले के स्तर से काफी नीचे था।

अक्टूबर क्रांति के बाद देहातों की संरचना में काफी परिवर्तन आ गया था। जमींदारियां-जागीरदारियां समाप्त कर दी गई थीं और उनके ज्यादातर बाशिन्दे विदेश भाग गये थे। इन जमींदारियों-जागीरदारियों में जिन जमीनों पर आधुनिक ढंग से खेती होती थी उन्हें राज्य फार्मों में तब्दील कर दिया गया था। शेष जमीनें किसानों के बीच बांट दी गई थीं।

किसानों के बीच जमीनों के बंटवारे का यह परिणाम निकला था कि देहातों में अब मध्यम किसान बहुमत में आ गये थे। किसानों का एक छोटा हिस्सा कुलक या धनी किसान था जबकि अपेक्षाकृत एक बड़ी संख्या गरीब किसानों की थी। खेत मजदूरों की संख्या भी कम थी। गरीब किसान और खेत मजदूर मिलकर देहाती अल्पसंख्या ही बनते थे।

सोवियत सत्ता ने अक्टूबर क्रांति के बाद जमीनों के बंटवारे का जिम्मा किसान समितियों को ही दे दिया था। इनमें समाजवादी क्रांतिकारी ही हावी थे। बोल्शेविक पार्टी की उपस्थिति देहातों में काफी कम थी और यह कमी एक दशक बाद भी बनी रही। किसान समितियों और परम्परागत ग्राम संस्थाओं (मीर) में समाजवादी क्रांतिकारियों की पकड़ ने भूमि वितरण पर अपना असर डाला था। इसलिए खेतिहर मजदूर और गरीब किसान इससे कम लाभान्वित हुए थे जबकि कुलकों ने इससे फायदा उठाया था। लेकिन तब भी इस सबका परिणाम यह हुआ था कि देहातों में अब मध्यम किसान बहुसंख्या में थे।

बोल्शेविक पार्टी ने 1918 के मध्य में देहातों में कुलकों के बढ़ते प्रभाव को रोकने के लिए गरीब किसानों की समितियां बनाने का फैसला किया था। इन समितियों ने प्रथमतः तो कुलकों से अतिरिक्त उपज की वसूली सुनिश्चित की। लेकिन साथ ही उन्होंने कुलकों

द्वारा क्रांति के सारे फल हथियाने से रोका। इन समितियों के कारण मध्यम किसानों को भी सहारा मिला। बाद में साल के अंत में इन समितियों का ग्राम सोवियतों में विलय कर दिया गया।

बोल्शेविक पार्टी के लिए स्पष्ट था कि नयी आर्थिक नीति के तहत पूंजीवादी तत्वों को जो भांति-भांति की छूटें दी जा रही हैं उससे पूंजीवाद को बढ़त मिलेगी पर यह घबराने की बात नहीं थी क्योंकि सर्वहारा अधिनायकत्व दृढ़ता से कायम था तथा अर्थव्यवस्था के मूलभूत हिस्से सोवियत सत्ता के हाथ में थे।

जैसा कि अपेक्षित था खेती और उद्योग-धंधों के बीच व्यापार के संबंध बहाल होने से न केवल खेती की उपज में वृद्धि हुई बल्कि कुलकों की ताकत में भी वृद्धि हुई। बेचने के लिए कुलकों के पास ही सबसे ज्यादा अतिरिक्त उत्पाद होता था। वे अपनी सुविधानुसार अपनी उपज को बेचने के लिए रोक भी सकते थे जिससे उन्हें ज्यादा से ज्यादा दाम मिले। उनकी देखा-देखी मध्यम किसानों में भी यह प्रवृत्ति पैदा हो रही थी।

कुलकों को नियंत्रित करने के लिए सोवियत सत्ता ने कुछ कदम उठाये थे। उन पर भारी कर लगता था और उन्हें अपने उत्पाद को निश्चित दाम पर राज्य को बेचना होता था। उनके द्वारा लगान पर जमीन उठाये जाने की सीमा निर्धारित थी। इसी तरह उनके द्वारा मजदूरों को अपनी खेती में लगाने की भी सीमा थी। इन सब प्रावधानों के द्वारा कुलकों पर अंकुश लगाया जाता था। पर तब भी उनके विकास को तथा देहातों में इनके प्रभाव को नहीं समाप्त किया जा सकता था। 1927-28 के सालों में जब मौसम के कारण खेती में उत्पादन में कुछ कमी रही तो इन्होंने इसका फायदा उठाकर सोवियत सत्ता को अनाज बेचने से मना कर दिया और इस तरह खाद्यान्न संकट पैदा किया।

जैसा कि पहले कहा गया है, आर्थिक पुनर्संगठन पूरा होते-होते खेती का उत्पादन युद्ध पूर्व की स्थिति तक पहुंच गया था पर खाद्यान्न के मामले में ऐसा नहीं था । इससे भी बड़ी बात यह थी कि शहरों को बेचे जाने वाले अनाज का स्तर युद्ध पूर्व से अभी काफी नीचा था। यह आधे तक भी नहीं पहुंचा था।

इसका एक प्रमुख कारण खेती का बिखराव था। पहले यह बड़ी जमींदारियां और जागीरदारियां ही थीं जो ज्यादातर अनाज पैदा करती थीं और शहरों को बेचती थीं। इन्हीं के बल पर रूस अनाज का बड़ा निर्यातक था। (कहने की बात नहीं कि यह रूस की विशाल देहाती आबादी की कंगाली की कीमत पर होता था) अब जमींदारों-जागीरदारों के खात्मे के बाद खेती छोटे-छोटे टुकड़ों में बंट गयी थी। बंटवारे का जो सिलसिला 1918 में शुरू हुआ था वह अभी भी जारी था। इसी वजह से देहातों में मध्यम किसानों की बहुलता हो गई थी। लेकिन यह छोटी खेती प्राकृतिक खेती की ओर लौट रही थी और बाजार के लिए बहुत कम उत्पादन कर पाती थी। यह सोवियत व्यवस्था के लिए गंभीर परेशानी पैदा करता था।

इन स्थितियों में बोल्शेविक पार्टी ने तय किया कि कुलकों पर हमला बोला जाये और खेती के सामूहिकीकरण की ओर बढ़ा जाये। जहां कुलकों पर हमला अनाज के तात्कालिक संकट को हल करता था वहीं सामूहिकीकरण इस संकट का दूरगामी हल प्रदान करने के साथ-साथ देहातों में समाजवाद को स्थापित करता था। पार्टी ने नारा दिया : मजबूती से गरीब किसानों का सहारा लो, मध्यम किसानों से सहयोग को मजबूत करो और कुलकों से जम कर लड़ो। कुलकों के प्रतिरोध को तोड़ने के लिए संकटकालीन उपाय किया गया। जिसके तहत निश्चित दाम पर अनाज राज्य को न बेचने पर कुलकों का समस्त अतिरिक्त उत्पाद जब्त किया जा सकता था। दिसंबर, 1927 में आयोजित पंद्रहवीं पार्टी कांग्रेस से सामूहिकीकरण के अभियान की शुरुआत हो गई।

जैसा कि स्वाभाविक था, सामूहिकीकरण के इस अभियान में गरीब किसानों और खेत मजदूरों ने पहलकदमी ली। सामूहिकीकरण की प्रगति होने पर इससे होने वाले फायदों को देखकर मध्यम किसान भी इसकी ओर आकर्षित होने शुरू हुए। चूंकि सोवियत राज्य सामूहिक फार्मों को मशीनरी इत्यादि के जरिये सहायता देता था, इसलिए यह मध्यम किसानों के लिए भारी आकर्षण का सबब बना। वे अक्सर ही इसके लिए कुलकों पर निर्भर करते थे जो इसका पूरा फायदा उठाते थे।

सामूहिकीकरण के शुरुआती दौर में यह नीति अपनायी गयी कि शुरुआत भांति-भांति के सहकारीकरण से की जाये। एक बार सहकारीकरण की मंजिल तक पहुंच जाने के बाद फिर सामूहिकीकरण तक छलांग लगाना आसान हो जाता था।

सामूहिकीकरण के इस अभियान में पार्टी ने समझाने-बुझाने की नीति अपनाई। इसे स्थापित किया गया कि सामूहिक फार्मों में शामिल होना पूर्णतया स्वैच्छिक है। साथ ही यह भी कहा गया कि ये सामूहिक फार्म उत्पादक संघ होंगे, कम्यून नहीं। इसमें केवल उत्पादन के साधनों का ही सामूहिकीकरण किया जायेगा। उपभोग की चीजें मसलन मुर्गे-मुर्गियों और सूअर इत्यादि सामूहिक नहीं किये जायेंगे।

1928 में जैसे ही सामूहिकीकरण का अभियान आगे बढ़ा और कुलकों पर हमला तेज हुआ वैसे ही पार्टी के भीतर बुखारिन-तोम्स्की जैसे लोग छटपटाने लगे। बुखारिन ने काफी पहले ही कुलकों को धनी बनने की सलाह दी थी। ये लोग सोचते थे कि नयी आर्थिक नीति अनिश्चित काल तक जारी रहेगी और उसका पूंजीवाद को छूट देने वाला पहलू भी जारी रहेगा। इसलिए जब गांवों में वर्ग-संघर्ष तेज हुआ, देहातों में समाजवादी अर्थव्यवस्था की ओर बढ़ा गया तो इनकी कुलक समर्थक आत्मा कराह उठी। इन्होंने कुलकों पर हमले का विरोध किया और कहा कि कुलक स्वयं ही धीमे-धीमे समाजवाद स्वीकार कर लेंगे। यह देहातों के पूंजीपति वर्ग के स्वेच्छा से समाजवाद स्वीकर कर लेने का सिद्धान्त था। यह गौरतलब है तब सोवियत संघ में निजी पूंजीवाद अपने सबसे प्रमुख रूप में देहातों के कुलकों के रूप में ही बचा हुआ था। उद्योग और व्यापार में वह एकदम हाशिये पर जा चुका था। यही नहीं, देहातों की

आबादी कुल आबादी का नब्बे प्रतिशत थी और कुलक एक वर्ग के तौर पर सारे देश में फैले हुए थे। वे अपनी उपस्थिति से पूंजीवादी प्रवृत्तियों को भी बढ़ावा दे रहे थे।

ऐसी अवस्था में प्रत्यक्ष या परोक्ष ढंग से कुलकों की हिमायत का मतलब पूंजीवाद की हिमायत करना था। इसका मतलब था सोवियत संघ में समाजवाद के निर्माण से मुकरना। यह पूंजीवाद के सामने आत्मसमर्पण था।

पार्टी के भीतर के इन दक्षिणपंथियों को संघर्ष चला कर परास्त किया गया और सामूहिकीकरण के अभियान को एक नये स्तर पर ले जाया गया। 1929 के अंत में तय किया गया कि कुलकों को नियंत्रित करने के बदले अब एक वर्ग के तौर पर उनके खात्मे की ओर बढ़ना चाहिए तथा सामूहिकीकरण को एक आम आंदोलन बना देना चाहिए। स्थितियां भी अब इसके लिए अनुकूल हो गई थीं।

1927 में कुलकों ने 60 करोड़ पूड से ज्यादा अनाज पैदा किया था जिसमें 13 करोड़ पूड बिकाऊ था। उस साल सामूहिक और सरकारी खेतों से केवल साढ़े तीन करोड़ पूड बिकाऊ अनाज ही निकला था। 1929 आते-आते सामूहिक फार्मों और सरकारी फार्मों की स्थिति काफी मजबूत हो चुकी थी। इस साल इन्होंने करीब 40 करोड़ पूड अनाज पैदा किया जिसमें से 13 करोड़ पूड बेचा गया। 1930 में स्थिति और बेहतर हुई तथा सरकारी और सामूहिक फार्मों ने 40 करोड़ पूड बिकाऊ अनाज पैदा किया।

स्पष्ट था कि अब तक देहातों में सोवियत सत्ता का आर्थिक आधार काफी मजबूत हो गया था और वर्ग-शक्तियों का सम्बन्ध बदल गया था। अब 1921 या 1925 वाली स्थिति नहीं रह गयी थी। अब कुलकों को नियंत्रित करने के बदले एक वर्ग के तौर पर उनके सफाये की ओर बढ़ा जा सकता था। इसका मतलब खेती का पूर्ण सामूहिकीकरण भी था ( सरकारी फार्मों के अतिरिक्त )। स्पष्टतः देहात तीखे वर्ग-संघर्ष से गुजरने वाले थे।

कुलकों के एक वर्ग के तौर पर खात्मे का मतलब था उनके पास मौजूद उत्पादन के साधनों-खेत, मशीनें, जानवर इत्यादि-की जब्ती और उन्हें सामूहिक फार्मों को सौंप दिया जाना। यह कुछ उसी तरह था जैसे पहले उद्योग-धंधों को पूंजीपतियों से जब्त किया गया था। स्वभावतः ही कुलकों की ओर से इसका तीव्र प्रतिरोध होना था।

1930 की शुरुआत से आम सामूहिक आंदोलन की जो शुरुआत हुई उसमें इस बात का ध्यान रखा गया कि देश के अलग-अलग हिस्सों की स्थिति अलग-अलग है। इसीलिए इनमें सामूहिकीकरण की गति अलग-अलग होनी चाहिए। पार्टी की केन्द्रीय समिति के एक फैसले के तहत पूरे देश को तीन हिस्सों में बांट दिया गया और तीनों के लिए सामूहिकीकरण पूरा करने की अलग-अलग तारीखें तय की गईं। सामूहिकीकरण के लिए सबसे ज्यादा तैयार उत्तरी कोकेशस और मध्य व निम्न वोल्गा क्षेत्र में सामूहिकीकरण 1931 के बसन्त तक पूरा होना था। उक्रेन, काली मिट्टी का मध्य प्रदेश, साइबेरिया, उराल और कजाकिस्तान में यह 1932 के बसन्त तक पूरा होना था। बाकी बचे हिस्सों-मास्को प्रदेश, ट्रांस काकेशिया तथा मध्य एशियाई गणतंत्र- में यह 1933 तक चल सकता था।

आम सामूहिकीकरण आंदोलन ने तेजी से गति पकड़ी। खेत मजदूरों और गरीब किसानों ने तो इसमें भारी उत्साह दिखाया ही, मध्यम किसान भी हिचक छोड़ कर इसमें कूद पड़े।

लेकिन आंदोलन की सफलता से उत्साहित होकर कुछ अतिरेक भी हुए। कई जगह समझाने-बुझाने की सही कार्यपद्धति छोड़कर ऊपर से फरमान के जरिये सामूहिक फार्म गठित किये गये। कुछ जगहों पर सामूहिक फार्म तक यानी उत्पादन के साधनों के सामूहिकीकरण तक सीमित रहने के बदले कम्यून गठित करने के प्रयास किये गये। कई जगहों पर तुरत-फुरत सामूहिक फार्म गठित कर लेने की प्रवृत्ति देखी गई जबकि उस क्षेत्र के लक्ष्य के लिए अभी बहुत समय था। कुछ अन्य जगहों पर मध्यम किसानों को कुलक घोषित कर उनकी सम्पत्ति की जब्ती की गई। कहीं-कहीं यह भी देखने में आया कि जोर-जबर्दस्ती से, सम्पत्ति जब्त कर लेने की धमकी देकर लोगों को सामूहिक फार्म में शामिल किया गया। कुछ लोगों ने सामूहिकीकरण के फर्जी आंकड़े भी दिखाये।

सामूहिकीकरण के आंदोलन में ये खामियां और गलतियां पूरे आंदोलन को ही बदनाम करने और पटरी से उतार देने का खतरा पैदा करती थीं। देहातों के वर्ग शत्रु यानी कुलक इनका पूरा फायदा उठाने की फिराक में थे। वे अक्सर गलतियों के लिए प्रोत्साहित भी करते थे।

जैसे ही सामूहिकीकरण आंदोलन की ये खामियां-कमियां प्रकाश में आईं, पार्टी ने इन्हें रोकने के लिए तुरंत कदम उठाये। 2 मार्च, 1930 को स्तालिन का लेख -सफलता से उन्मत्त-प्रकाशित हुआ। इसमें कमियों-खामियों की जड़ों को चिह्नित करते हुए सामूहिकीकरण की पार्टी द्वारा निर्धारित नीति पर चलने का आह्वान किया गया। खास तौर पर इसमें जोर-जबर्दस्ती के तरीके इस्तेमाल करने के खिलाफ चेतावनी दी गयी और स्वैच्छिक तरीकों पर जोर दिया गया। दो सप्ताह बाद पार्टी की केन्द्रीय समिति ने भी एक प्रस्ताव के जरिये गलतियों को दुरुस्त करने के लिए निर्देश दिये। उसने स्पष्ट तौर पर कहा कि जो लोग पार्टी की नीति के हिसाब से चलने को तैयार नहीं हैं वे हट जायें या हटा दिये जायें। केन्द्रीय समिति ने कुछ मण्डलों और प्रादेशिक पार्टी संगठनों के मसलन मास्को प्रदेश और ट्रांस काकेशिया के पार्टी नेतृत्व बदल दिये।

सामूहिकीकरण में हो रही इन गलतियों के खिलाफ बोल्शेविक पार्टी द्वारा समय पर उठाये गये इन कदमों की वजह से इन्हें दुरुस्त कर दिया गया और सामूहिकीकरण अप्रतिहत गति से आगे बढ़ चला। ऐसा नहीं था कि आगे गलतियां नहीं हुईं पर अब वे उस स्तर की नहीं थीं।

1931 तक अनाज पैदा करने वाले जिलों में सहकारीकरण 80 प्रतिशत तक हो चुका था तथा औद्योगिक फसलें पैदा करने वाले जिलों में 50 प्रतिशत तक। कुल सामूहिक फार्मों की संख्या दो लाख थी जबकि सरकारी फार्म चार हजार थे। ये कुल मिलाकर खेती की

दो तिहाई जमीन जोतते थे। 1934 के अंत तक 90 प्रतिशत जमीन इनके तहत आ चुकी थी जबकि तीन-चौथाई किसान परिवार सामूहिक फार्मों में शामिल हो चुके थे।

लेकिन सामूहिक फार्मों के गठन की इस तेज प्रगति के साथ उनकी कुछ दिक्कतें भी थीं। अक्सर ही इन सामूहिक फार्मों का सुदृढ़ीकरण ढंग से नहीं हुआ था और वे ढीले-ढाले ढंग से चल रहे थे। उनके सदस्यों में सामूहिक फार्म के कामों के प्रति कभी-कभी हीला-हवाली को रुख देखने में आता था। फसल बुवाई और कटाई के समय ढंग से काम न होने के कारण काफी नुकसान हो जाता था। श्रम सम्बन्धी अनुशासन ढीला था। आमदनी के बंटवारे के बारे में भी नीति दिक्कततलब थी जिसमें काम के अनुसार नहीं बल्कि परिवार के हिसाब से बंटवारा होता था। काम की व्यक्तिगत जिम्मेदारी न होने से सामूहिक खेत कमजोर होते थे।

कई बार कुलक सामूहिक फार्मों में घुस आते थे और वहां तोड़-फोड़ मचाते थे। वे उन सारी प्रवृत्तियों को बढ़ावा देते थे जिनसे सामूहिक फार्मों की हालत खस्ता हो। यह इनके वर्ग संघर्ष का तरीका था। वे मशीनों को नुकसान पहुंचाते थे, जानवरों को मार डालते थे।

सामूहिक फार्मों की इस स्थिति में सुधार के लिए पार्टी ने सामूहिक फार्मों के लिए काम करने वाले मशीन और ट्रैक्टर स्टेशनों में राजनीतिक विभाग गठित करने का फैसला किया। इसके लिए सत्रह हजार प्रशिक्षित पार्टी कार्यकर्ता वहां भेजे गये। 1933 व 34 के सालों में इस राजनीतिक विभाग ने सामूहिक फार्मों की दिक्कतों को दूर करने के लिए काफी कार्य किया।

सामूहिक फार्मों के गठन ने सोवियत संघ में बिखरी हुई पिछड़ी खेती को कुछ ही सालों में एक नये स्तर पर पहुंचा दिया। 1934 में सोवियत गांवों में 281000 ट्रैक्टर और 32000 हार्वेस्टर कम्बाइन काम करते थे। यह खेती का विशाल पैमाने पर मशीनीकरण था। इससे किसान एक झटके से आधुनिक युग में प्रवेश कर गये। यही नहीं, अब वे सोवियत पूंजीपतियों-जमींदारों, कुलकों और मुनाफाखोरों से मुक्त हो गये थे। वे कंगाली व जहालत से मुक्त हो गये थे। अब वे मिल-जुलकर समूह के लिए और अपने लिए काम करते थे।

# VII
# पंचवर्षीय योजनाएं और समाजवादी निर्माण का पूरा होना

दिसंबर 1927 में आयोजित पन्द्रहवीं पार्टी कांग्रेस ने फैसला किया था राष्ट्रीय अर्थतंत्र के विकास के लिए पंचवर्षीय योजना बनाई जाय। अब तक आर्थिक नियोजन काफी मजबूत हो चुका था और पूंजीवाद के खिलाफ समाजवादी हमले के लिए तेजी से बढ़ा जा सकता था।

पूंजीवाद में उत्पादन-वितरण की आम गति को बाजार और प्रतियोगिता तय करते हैं। उत्पादन की किस शाखा में कितना उत्पादन होगा तथा उसमें प्रति इकाई माल में कितना श्रम लगेगा यह बाजार और प्रतियोगिता तय करते हैं। और यह होता है पूंजीवाद में औसत मुनाफे की प्रवृत्ति के कारण। हर पूंजीपति ज्यादा से ज्यादा मुनाफा कमाने की कोशिश करता है और इसीलिए वे केवल सस्ते से सस्ता पैदा कर महंगे से मंहगा बेचना चाहता है बल्कि कम मुनाफा होते देख वह ज्यादा मुनाफे के क्षेत्र में प्रवेश कर जाता है।

समाजवाद में माल उत्पादन और विनिमय (पहले उत्पादन के साधनों के क्षेत्र में और फिर व्यक्तिगत उपभोग के क्षेत्र में) क्रमशः कम से कम होता चला जाता है इसलिए उत्पादन और वितरण को नियंत्रित-नियमित करने में बाजार की भूमिका न्यून से न्यून होती जाती है। इसका स्थान सारे समाज के पैमाने पर योजना ले लेती है। योजनाबद्धता समाजवादी उत्पादन-वितरण का अनिवार्य हिस्सा है।

सोवियत संघ में उद्योग के क्षेत्र में सार्वजनिक क्षेत्र के ही प्रधान होने के कारण वहां किसी हद तक योजनाबद्धता का पालन होता था। अब समूची अर्थव्यवस्था के समाजवादीकरण की ओर कदम उठाने के बाद यह आवश्यक हो गया कि योजनाबद्धता को एक नये स्तर पर ले जाया जाये। यह सामूहिकीकरण और समाजवादी निर्माण को एक बड़ा प्रेरण भी प्रदान करता।

योजनाबद्धता के इस नये स्तर ने पंचवर्षीय योजानाओं का रूप लिया।

लम्बे विचार विमर्श के बाद अप्रैल 1929 में आयोजित पार्टी की 16वीं कांफ्रेंस ने पहली पंचवषीय योजना को मंजूरी दी जो 1929-1933 की अवधि के लिए थी। तय पाया गया कि इस अवधि में कुल 64 अरब 60 करोड़ रूबल की पूंजी लगाई जाये। इसमें 19 अरब 50 करोड़ रूबल उद्योग धंधों में, 10 अरब रूबल यातायात के साधनों के विकास में तथा 23 अरब 20 करोड़ रूबल खेती के विकास में लगने थे। विशाल पैमाने पर खेती के सामूहिकीकरण के कारण खेती की आवश्यकताएं बहुत ज्यादा थीं जो योजना में इसको प्रदान पूंजी की मात्रा में अभिव्यक्त होती हैं।

प्रथम पंचवर्षीय योजना का उद्देश्य स्वयं उद्योग-धंधों सहित सभी क्षेत्रों को आधुनिकतम तकनीक से लैस कर पुनर्संगठित करना था। स्वभावतः इससे उद्योग धन्धों में भारी उद्योगों और मशीन उद्योग पर जोर हो जाता था। क्योंकि इनके बिना तमाम क्षेत्रों को फिर से सुसज्जित और पुनर्संगठित नहीं किया जा सकता था।

पंचवर्षीय योजना के कार्यान्वयन ने अभूपूर्व उत्साह का संचार किया। पांच वर्ष की योजना को कम से कम समय में पूरा करने की होड़ लग गयी। यह तब जब योजना का अल्पतम नहीं बल्कि महत्तम स्वरूप स्वीकार किया गया था। खेती के सामूहिकीकरण अभियान के प्रबल वेग से मिलाकर इसे देखने पर उस समय सोवियत जनता की अभूतपूर्व उद्यमशीलता का कुछ अंदाज लगाया जा

सकता है। पंचवर्षीय योजना का पहला साल पूरा होते-होते एक नया नारा पैदा हुआ-पंचावर्षीय योजना चार साल में पूरी करो। समय ने दिखाया कि यह नारा व्यर्थ नहीं लगाया गया था।

भारी उद्योगों और मशीन उद्योग के मजबूती से आगे बढ़ जाने के बाद उद्योग-धंधों की दूसरी शाखाओं-यातायात व्यवस्था और खेती के उपकरणों को भी आधुनिकतम तकनीक से लैस करने का समय आया । पुरानी मशीनों और तकनीक से काम नहीं चल सकता था। इसके बिना समाजवाद को सुदृढ़ आधार प्रदान नहीं किया जा सकता था।

आधुनिकतम तकनीक बिना कौशल के विकास के बहुत कारगर नहीं हो सकती थी। इसलिए जरूरी हो गया कि कौशल को विकसित किया जाये। यह सुचारु रूप से हो इसके लिए आवश्यक था कि नेतृत्वकारी कार्यकर्ता स्वयं कौशल हासिल करने की ओर बढ़ें। इसके बिना उनका प्रबन्धन और संचालन कागजी बन कर रह जाता। इस आवश्यकता के मद्देनजर कौशल विकास को अभियान के तौर पर लिया गया और इस तरह सोवियत अर्थव्यवस्था आधुनिकतम तकनीक के साथ-साथ कौशल से भी लैस हो गई।

1933 के आरंभ में यह स्पष्ट हो गया कि पहली पंचवर्षीय येाजना समय से पहले पूरी हो गई है। इसमें कुल 4 साल 3 महीने लगे थे। इस योजना के पूरी होने के साथ सोवियत संघ एक खेतिहर देश से औद्योगिक देश बन चुका था। देश की कुल उपज में अब उद्योग का हिस्सा 70 प्रतिशत था। उद्योग-धंधों के क्षेत्र में पूंजीवादी तत्वों को खत्म कर दिया गया था और अब उसमें समाजवादी अर्थतंत्र एकमात्र व्यवस्था थी। खेती में भी कुलकों के सफाये के बाद तथा सामूहिकीकरण के बहुत आगे निकल जाने से समाजवादी अर्थतंत्र की प्रधानता स्थापित हो गई थी। सामूहिकीकरण ने देहातों से कंगाली खत्म कर दी थी। औद्योगिक क्षेत्र में बेरोजगारी समाप्त हो गई थी। कुछ शाखाओं में आठ घंटे का कार्यदिवस रखते हुए बाकी में सात घंटे का कार्य दिवस लागू कर दिया गया था। अस्वास्थ्यकर कामों में तो कार्यदिवस छः घंटे तक सीमित कर दिया गया था। सबसे बढ़कर यह कि अर्थव्यवस्था के सभी क्षेत्रों में समाजवाद की जीत ने मनुष्य के शोषण को समाप्त कर दिया था।

यह सब अभूतपूर्व था और ठीक इसी काल में पूंजीवादी दुनिया में महामंदी और उसके द्वारा ढाई जा रही तबाही को देखते हुए और भी ज्यादा गौरवशाली। कोई आश्चर्य नहीं कि इसे देख कर तबाहहाल पूंजीवादी दुनिया के मानवतावादी किस्म के लोग सोवियत समाजवाद के मुरीद हो गये। यह उचित ही था कि जनवरी 1934 में आयोजित सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी (बोल्शेविक) की सत्रहवीं कांग्रेस को 'विजेताओं की कांग्रेस' का नाम दिया गया।

पहली पंचवर्षीय योजना के समय के पहले सफलतापूर्वक पूरा होने पर और भी विशाल पैमाने की दूसरी पंचवर्षीय योजना बनाई गयी। इसमें कुल 133 अरब रूबल की पूंजी लगनी थी। इस योजना का लक्ष्य 'पूंजीवादी तत्वों का पूरी तरह खात्मा करना, आर्थिक जीवन और लोगों के दिमाग से पूंजीवाद के अवशेष खत्म करना, आधुनिकतम कौशल के अनुसार सारे राष्ट्रीय अर्थतंत्र को पूरी तरह पुनर्संगठित करना, नये कौशल के सामान और धंधों का उपयोग करना सीखना, खेती में मशीनें चालू करना और उसकी पैदावार बढ़ाना रखा गया'।

एक बार फिर सोवियत जनता ने अतीव पहलकदमी और उद्यमशीलता का परिचय देते हुए दूसरी पंचवर्षीय योजना को महज चार साल तीन महीने में पूरा कर दिया। अभी जबकि पूंजीवादी देश महामंदी की जकड़न से उबर नहीं पा रहे थे सोवियत उद्योग ने तेज रफ्तार से प्रगति कर 1937 में 1913 के मुकाबले 7 गुना का स्तर हासिल कर लिया था। 1929 के मुकाबले यह चार गुने से ज्यादा की वृद्धि थी।

खेती में सामूहिकीकरण अब 93 प्रतिशत परिवारों को समेट चुका था। अनाज वाले क्षेत्रों में तो 99 प्रतिशत सामूहिक फार्मों में थे। खेती की विशाल प्रगति को ये आंकड़े दिखाते हैं :

1913 में सभी फसलों का रकबा 10 करोड़ पचास लाख हेक्टेयर था जो 1937 में बढ़कर 13 करोड़ पचास लाख हेक्टेयर हो गया। 1913 में अनाज की फसल 4 अरब 80 करोड़ पूड थी जो 1937 में 6 अरब 80 करोड़ पूड हो चुकी थी। इस बीच कपास की फसल 4 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़कर 15 करोड़ 40 लाख पूड हो गई थी। सन की फसल 1 करोड़ 90 लाख पूड से 3 करोड़ 10 लाख पूड, चीनी बनाने वाले चुकन्दर की फसल 65 करोड़ 40 लाख पूड से बढ़कर 1 अरब 31 करोड़ 90 लाख पूड तथा तिलहन की फसल 12 करोड़ 90 लाख पूड से बड़कर 30 करोड़ 60 लाख पूड हो गई थी। सोवियत संघ अभाव को पीछे छोड़कर आगे बढ़ चुका था। दूसरी पंचवर्षीय योजना के दौरान तनख्वाहें दुगुने से ज्यादा बढ़ गईं।

सोवियत सत्ता के शुरुआती दौर में कम्युनिस्ट सुबोत्निक (कम्युनिस्ट शनिवार) आंदोलन बिना पारिश्रमिक की अपेक्षा किये नये समाज के निर्माण में स्वैच्छिक योगदान का प्रतीक था। इस दौर में समाजवादी उत्पादन के तीव्र विकास में शाक ब्रिगेड, स्ताखानोव आंदोलन, टगबोट आंदोलन जैसे आंदोलनों का विशेष महत्व था। ये आंदोलन साथ ही सोवियत जनता की सृजनशीलता के प्रतीक भी थे।

पंचवर्षीय योजनाओं के काल में प्रगति केवल भौतिक उत्पादन के क्षेत्र में ही नहीं हुई। मजदूर-किसान जनता के सांस्कृतिक स्तर को ऊपर उठाने के लिए विशाल प्रयास किये गये और उसमें सफलता पाई गई। प्राथमिक और माध्यमिक स्कूलों में 1914 में 80 लाख विद्यार्थी थे। 1936-37 में उनकी तादाद 2 करोड़ 80 लाख हो गई थी। इसी बीच कृषि विद्यालयों के विद्यार्थियों की संख्या 112000 से बढ़कर 542000 हो गई थी। और आम तौर पर लोगों के स्वास्थ्य को बेहतर बनाने के लिए अस्पतालों के अलावा बड़े पैमाने पर स्वास्थ्य गृह, विश्राम गृह और सेनेटोरियम खोले गये।

सोवियत समाजवादी निर्माण की इस आम प्रगति की अभिव्यक्ति सोवियत कला, सिनेमा और विज्ञान में भी हुई जिसने सारी दुनिया में अपने झण्डे गाड़े।

सोवियत समाजवाद के निर्माण के काम के पूरा होने पर अब इसका संविधान इसके उपयुक्त नहीं रह गया। सोवियत संविधान 1924 में स्वीकृत हुआ था जब सोवियत संघ अस्तित्व में आया था। तब नयी आर्थिक नीति का काल था और सर्वहारा अधिनायकत्व के तहत समाजवाद और पूंजीवाद के बीच प्रतियोगिता विद्यमान थी। हालांकि अर्थव्यवस्था के मूलभूत तंत्रों पर सर्वहारा राज्य का कब्जा था तब भी नयी आर्थिक नीति के तहत पूंजीवाद को कुछ छूट मिली थी। और वह कुछ आगे बढ़ा था। देहातों में तो छोटी निजी सम्पत्ति और पूंजीवाद का ही बोलबाला था। ऐसे में समाजवाद की निर्णायक विजय अभी बाकी थी। सोवियत संघ का तब का संविधान इसे अभिव्यक्त करता था। अब जबकि समाजवाद न केवल निर्णायक रूप से विजयी हो गया था बल्कि पूंजीवाद का समूल नाश हो गया था तब इसे अभिव्यक्त करते नये संविधान का निर्माण जरूरी था।

सोवियतों की आठवीं कांग्रेस ने, जो नवंबर 1936 में बुलाई गई थी, इस नये सोवियत संविधान को मंजूरी दी। इसमें बिना किसी बंधन के 18 साल से ऊपर के हर व्यक्ति को नागरिक के बतौर चुनने और चुने जाने का अधिकार दिया गया। चुनाव गुप्त मतदान के जरिये और प्रत्यक्ष तौर पर होने थे। स्थानीय स्तर से लेकर केन्द्र तक सारे चुनाव प्रत्यक्ष होते थे। नये संविधान में सोवियत समाज को दो मित्र वर्गों - मजदूर और किसान - से निर्मित बताया गया था जो पहले की स्थिति से बदलकर भिन्न स्थिति ग्रहण कर चुके थे। एक तीसरा हिस्सा बुद्धिजीवियों का भी था जो पूंजीवादी समाज के बुद्धिजीवी से भिन्न था।

सोवियित संविधान ने समाजवादी उसूल घोषित किया : हर एक से उसकी योग्यता के अनुसार, हर एक को उसके काम के अनुसार। इसने साथ ही भविष्य के कम्युनिस्ट समाज की ओर बढ़ने का लक्ष्य घोषित किया। जिसमें 'हरेक से उसकी योग्यता के अनुसार, हरेक को उसकी आवश्यकता के अनुसार' उसूल लागू होना था।

# VIII
# सोवियत संघ की आर्थिक समस्याएं

सोवियत संघ में समाजवादी निर्माण के पूरा होने की घोषणा तथा उपरोक्त सोवियत संविधान के लागू होने के पन्द्रह साल बाद स्टालिन ने सोवियत समाजवादी समाज की आर्थिक समस्याओं पर एक गहन दृष्टि डाली और कुछ चीजों को रेखांकित किया। आज पश्चदृष्टि से स्टालिन की इन बातों पर एक नजर डालना उपयुक्त होगा।

1952 में जब स्टालिन ने राजनीतिक अर्थशास्त्र पर एक पुस्तक तैयार करने के सिलसिले में हुई बहस में हस्तक्षेप करते हुए अपनी बात कही तब तक बीच में द्वितीय विश्व युद्ध का पूरा भयानक तबाही भरा काल गुजर चुका था। यही नहीं, सोवियत संघ को युद्ध की तबाही की भरपाई अपने दम पर ही करनी पड़ी थी। इसने सोवियत समाजवाद के विकास पर अपनी छाप छोड़ी थी। द्वितीय विश्वयुद्ध की तबाही और उसकी भरपाई की अनुपस्थिति में सोवियत समाजवाद को ज्यादा स्वस्थ और तेज गति से प्रगति करने का मौका मिला होता।

द्वितीय विश्व युद्ध ने सोवियत संघ में जो विनाश किया था उसकी किसी से तुलना नहीं थी। सोवियत आबादी का दस प्रतिशत इस लड़ाई में खेत रहा था। सोवियत संघ के सबसे ज्यादा औद्योगीकृत और खेती की दृष्टि से सबसे महत्वपूर्ण इलाकों पर लम्बे समय तक लड़ाई चली। यहां के उद्यमों को दूसरे क्षेत्रों में विस्थापित करना पड़ा था। जो विस्थापित नहीं हो सके वे तबाह हो गये। शहर के शहर नष्ट होकर खंडहर बन गये। द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के बाद जब सोवियत संघ में पुनर्निर्माण का काम शुरू हुआ तो उसे करने के लिए समाज के सबसे सक्षम लोगों का एक बड़ा हिस्सा मौजूद नहीं था। वह लड़ाई में शहीद हो गया था। साम्राज्यवादी मुल्कों के विपरीत सोवियत संघ को अपने पुनर्निर्माण का काम अपने दम पर ही करना पड़ा। वह अमेरिकी साम्राज्यवादियों द्वारा सहायता के बदले थोपी जाने वाली शर्तों को स्वीकार करने को तैयार नहीं था। इस सबके बावजूद सोवियत संघ बहुत तेजी के साथ केवल कुछ ही वर्षों में पुनर्निर्माण का काम पूरा करने में कामयाब रहा था। इतनी तेजी के साथ पुनर्निर्माण ने एक बार फिर समाजवादी व्यवस्था की श्रेष्ठता को प्रमाणित किया।

स्टालिन सोवियत संघ की आर्थिक समस्याओं की चर्चा उपरोक्त विशेष स्थिति को पृष्ठभूमि में रखकर अपेक्षाकृत ज्यादा सैद्धान्तिक तौर पर करते हैं। इसीलिए इनका महत्व और बढ़ जाता है।

1952 में सोवियत समाजवाद की स्थिति यह थी : उद्योग धन्धे और व्यापार सारे राज्य के नियंत्रण में थे। जमीन भी राज्य की थी। खेती में सामूहिक फार्मों की प्रधानता थी जबकि सामूहिक फार्मों के मुख्य उत्पादन के साधन (जमीन और मशीनें) राज्य की मिलकियत थे। सामूहिक फार्मों के उत्पाद या तो उसके सदस्यों द्वारा सीधे उपयोग किये जाते थे या फिर राज्य द्वारा तय दामों पर राज्य को बेचे जाते थे। स्वयं उद्योग धंधों के उत्पादों का मूल्य आंका जाता था और उद्यमों के मुनाफे पर ध्यान रखा जाता था पर ये उद्यमों की गति पर निर्णायक प्रभाव नहीं डालते थे। उद्योग के अन्य उत्पाद राज्य द्वारा तय दामों पर सामूहिक फार्मों या उसके सदस्यों को बेचे जाते थे। मजदूर और राज्य के अन्य कर्मचारी इत्यादि को वेतन मिलता था और वे व्यक्तिगत उपभोग की चीजें उससे खरीदकर उपभोग करते थे। यहां भी दाम राज्य द्वारा तय होते थे। सामूहिक फार्मों के सदस्यों को सामूहिक फार्म के कुल उत्पादन में अपना हिस्सा पाने के साथ व्यक्तिगत तौर पर कुछ गाय, सूअर, मुर्गियां इत्यादि पालने का अधिकार था जो उनकी व्यक्तिगत सम्पत्ति होते थे।

उपरोक्त से कुछ चीजें स्पष्ट हैं : सामूहिक फार्म राज्य याने सारे समाज की सम्पत्ति नहीं थे बल्कि कुछ किसानों की निजी सम्पत्ति थे। पर वहां भी जमीन और मशीनों के राज्य की सम्पत्ति होने के चलते निजी सम्पत्ति का दायरा सीमित था। सोवियत संघ में उत्पादन के साधनों में यही निजी सम्पत्ति बची हुई थी। इसके बरक्स उपभोग के साधन निजी सम्पत्ति थे जो खरीद-बेच के द्वारा हासिल

किये जाते थे। लेकिन चूंकि राज्य द्वारा वेतन और उपभोक्ता सामान के दाम दोनों तय किये जाते थे इसलिए मूल्य का नियम सीमित रूप में ही काम करता था। उद्योग और कृषि में खरीद-बेच भी राज्य द्वारा निर्धारित दाम पर होने के कारण उसमें भी मूल्य का नियम सीमित रूप में काम करता था। तब भी यह स्पष्ट है कि माल का विनिमय होता था और इसीलिए मूल्य के नियम भी काम करते थे। खरीद-बेच के कारण मुद्रा भी विद्यमान थी। हालांकि उद्यमों के संचालन में मुनाफे की नियामक भूमिका नहीं थी तब भी मुनाफों का आकलन होता था और वे कहीं न कहीं अपना प्रभाव भी डालते थे।

सोवियत संघ में समाजवाद की यह स्थिति कम्युनिज्म की उस निचली अवस्था से अभी नीचे थी जिसका मार्क्स ने **गोथा कार्यक्रम की आलोचना** में विश्लेषण किया था। कम्युनिज्म की उस निचली अवस्था में उत्पादन के सारे साधन राज्य की सम्पत्ति थे और समाज के सारे लोग राज्य से वेतन पाते थे। इससे गुजर कर ही कम्युनिज्म की ऊपरी अवस्था तक जाया जा सकता है जब 'हरेक से उसकी योग्यतानुसार, हरेक को उसके काम के अनुसार' का बुर्जुआ अधिकार निर्मूल किया जा सकता था और कम्युनिज्म का उसूल 'हरेक से उसकी योग्यतानुसार, हरेक को उसकी आवश्यकतानुसार' लागू किया जा सकता है।

इसमें सबसे बड़ी समस्या यह थी कि सामूहिक फार्म सारे समाज की सम्पत्ति कैसे बनायें जायें? स्टालिन राज्य द्वारा इनके अधिग्रहण या राष्ट्रीयकरण का विरोध करते हैं। तब क्या किया जाये? स्टालिन एक सम्भावित समाधान सुझाते हैं; सामूहिक फार्मों और राज्य के उद्यमों के बीच खरीद के बदले राज्य की किसी संस्था द्वारा उत्पादों का सीधे आदान-प्रदान हो। कुछ उत्पादों से शुरु कर जब यह सभी उत्पादों तक होने लगेगा तब सामूहिक फार्मों का गैरसार्वजनिक चरित्र समाप्त हो जायेगा। वे भी राजकीय उद्यमों की तरह सार्वजनिक सम्पत्ति हो जायेंगे। स्टालिन इस संभावित समाधान की ओर बढ़ते उससे पहले ही उनकी मृत्यु हो गयी। पर यहां यह सवाल बना रहता है कि सामूहिक फार्मों के मालिकाने और उसके उत्पादकों के बीच सम्बन्धों में परिवर्तन के बिना केवल उत्पाद के वितरण से क्या समस्या का समाधान हो सकता था क्योंकि वितरण उपरोक्त दोनों पर निर्भर करता है। इसमें यह और भी कि उत्पाद का प्रत्यक्ष हस्तगतकरण वही बना रहता है (यानी वे सामूहिक फार्म की सामूहिक सम्पत्ति होते हैं)। तब क्या केवल उसके बाद सारे उद्यमों और सामूहिक फार्मों के बीच उत्पादों का आदान-प्रदान ही सामूहिक फार्मों का निजी चरित्र समाप्त कर देता।

स्टालिन ऐसे समाधान पर आगे बढ़ते और ऐसे समाधान का कुछ परिणाम निकलता इससे पहले ही स्टालिन की मृत्यु हो गई और उनके बाद सोवियत पार्टी और सोवियत सत्ता पर हावी हुए लोगों ने इस दिशा में आगे बढ़ने के बदले सारी दिशा ही पलट दी। ख्रुश्चोव के सत्तारूढ़ होने के साथ सोवियत संघ पूंजीवादी पुनर्स्थापना की ओर बढ़ गया।

सोवियत समाजवाद की यह ऐसी जटिल समस्या थी जो उसके अतीत के, क्रांति पूर्व के, खेती में छोटी सम्पत्ति की प्रधानता वाले अतीत की देन थी। दुनिया भर में आज भी ज्यादातर देश ऐसे हैं जिन्हें क्रांति के बाद इस समस्या से जूझना पड़ेगा-पहले सामूहिकीकरण की और फिर सामूहिक फार्मों को सार्वजनिक सम्पत्ति बनाने की समस्या से। केवल ब्रिटेन और संयुक्त राज्य अमेरिका जैसे विकसित देश ही हैं जहां खेती में छोटी सम्पत्ति न के बराबर है और जहां खेती के विशाल फार्मों का भी उद्योग-धंधों की तरह क्रांति के बाद राज्य द्वारा अधिग्रहण कर लिया जायेगा।

यह देखते हुए कि तब सोवियत संघ में सामूहिक फार्मों में एक बड़ी आबादी रहती थी, इसने माल उत्पादन, मूल्य के नियम का संचालन इत्यादि उन समस्याओं को और बढ़ाया जो किसी भी कम्युनिज्म की निचली अवस्था वाले समाज में पाई जायेंगी। कम्युनिज्म की ओर बढ़ने का रास्ता ही यही है कि, जैसा स्टालिन स्वयं रेखांकित करते हैं, मालों के परिचलन और मूल्य के नियम के संचालन को अधिकाधिक सीमित किया जाय और अन्ततः पूर्णतः समाप्त कर दिया जाये। यह प्रथमतः उत्पादन के साधन के वितरण में और फिर क्रमशः उपभोग के साधनों के वितरण में किया जाये। उत्पादन के साधनों का उद्यमों के बीच एक योजना के तहत राज्य द्वारा बंटवारा हो और उपभोग के साधन अधिकाधिक मुफ्त वितरित किये जायें और उनका वेतन से रिश्ता खत्म हो (वेतन के बीच असमानता को कम करना इसका एक अन्य पहलू है)। अंततः चूंकि समाजवादी राज्य तिरोहित हो जायेगा इसलिए उत्पादन और उपभोग को योजनाबद्ध ढंग से नियोजित करने का जिम्मा राज्य के बदले समाज की किसी अन्य संस्था का हो जायेगा जो शासन नहीं करेगी बल्कि प्रबन्ध करेगी।

सोवियत संघ इस दिशा में आगे नहीं बढ़ सका। ठीक इसी कारण और भी ज्यादा बुनियादी स्तर की समस्याएं, जो कम्युनिस्ट समाज तक पहुंचने के लिए हल होना जरूरी हैं, अभी उस स्तर पर एजेण्डे पर नहीं आ पाईं जहां से वे वास्तव में हल होना शुरू होतीं। शहर और देहात के बीच, उद्योग और कृषि के बीच तथा शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के बीच भेद का खात्मा ऐसी ही समस्याएं थीं। इसी तरह संकीर्ण श्रम विभाजन से मुक्ति भी ऐसी समस्या थी। ऐसा नहीं कि स्टालिन इन समस्याओं से रूबरू नहीं थे। उन्होंने इस बहस में हस्तक्षेप करते हुए रेखांकित किया था कि शहर और देहात के बीच, उद्योग और कृषि के बीच व शारीरिक श्रम और मानसिक श्रम के बीच पहले की शत्रुतापूर्ण विरोध की स्थिति सोवियत संघ में समाप्त हो गई थी। पर इस तथ्य से इंकार नहीं किया जा सकता था कि इनके बीच भेद बचा हुआ था। संकीर्ण श्रम विभाजन से मुक्ति की तो अभी शुरुआत भी नहीं हो सकती थी कि क्योंकि उसके लिए और भी ऊंचे भौतिक और सांस्कृतिक स्तर की आवश्यकता थी।

# IX
# सोवियत समाजवाद की समस्याएं

जैसा कि उपरोक्त वर्णन से स्पष्ट है, स्टालिन मृत्युपर्यन्त सोवियत संघ में समाजवाद की समस्याओं से जूझते रहे और कुछ को उन्होंने सटीकता से सूत्रित भी किया। पर इस सबके बावजूद उनकी मृत्यु के ठीक बाद सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना ने दिखाया कि कुछ और ज्यादा गंभीर समस्याएं भी थीं जिन पर स्टालिन की नजर नहीं पड़ी। वे उन्हें नहीं देख पाये। यह भी कहा जा सकता है कि बिना पूरी क्रांति के विपर्यय के उन्हें देखा भी नहीं जा सकता था। सोवियत संघ और पूर्वी यूरोप के समाजवादी देशों में पूंजीवादी पुनर्स्थापना के बाद अपने देश में उन्हीं समस्याओं से जूझते हुए माओ उन समस्याओं को ठीक तरीके से सूत्रित कर पाये और उनके समाधान का रास्ता खोज पाये। यह रास्ता था महान सर्वहारा सांस्कृतिक क्रांति का।

स्टालिन सोवियत समाजवाद में माल, मुद्रा और मूल्य के नियम के चलन से भली-भांति वाकिफ थे। वे 'हरेक से उसकी योग्यतानुसार, हरेक को उसके काम के अनुसार' के समाजवादी उसूल से भी वाकिफ थे जिसे मार्क्स ने बुर्जुआ अधिकार कहा था। लेकिन इससे स्टालिन यह निष्कर्ष नहीं निकाल पाये कि ये चीजें बुर्जुआ तत्वों को लगातार जन्म देती रहेंगी। उद्योग और व्यापार के राज्य सत्ता के हाथ में आ जाने तथा खेती के सामूहिकीकरण के बाद उन्होंने घोषित कर दिया था कि सोवियत संघ में शोषक वर्गों का, शोषण का और इसीलिए वर्ग-संघर्ष का खात्मा हो गया है। अब केवल मित्र वर्ग बचे है : मजदूर-किसान और समाजवादी बुद्धिजीवी। ऐसी स्थिति में सोवियत समाजवाद को खतरा केवल देश के बाहर के साम्राज्यवादियों से ही था। सोवियत राज्य सत्ता की आवश्यकता प्रमुखतः इसी खतरे से निपटने के लिए थी। इसी सोच का यह परिणाम था कि देश के भीतर के सारे पार्टी विरोधी या सत्ता विरोधी लोग साम्राज्यवादियों के एजेण्ट मान लिए जाते थे जिनसे केवल उनके सफाये के जरिये ही निपटा जा सकता था। स्टालिन के पूरे काल में सर्वहारा अधिनायकत्व दृढ़ता से कायम था और वह सर्वहारा सत्ता विरोधियों से सख्ती से निपटता था पर इस अधिनायकत्व की कोई आंतरिक आवश्यकता नहीं मानी जाती थी। यदि देश में कोई शत्रु वर्ग नहीं बचा है और वर्ग-संघर्ष नहीं बचा है तो सर्वहारा अधिनायकत्व की भी वास्तव में कोई आवश्यकता नहीं बचती। उसके अस्तित्व का आधार भी केवल बाहरी खतरा ही बचता है। दार्शनिक तौर पर यह चीज की गति के लिए आंतरिक के बदले वाह्य कारक को प्रधान मान लेने के बराबर था।

इसी के साथ राजकीय सम्पत्ति और सारे समाज की सम्पत्ति के बीच फर्क को बताने के बावजूद स्टालिन समाजवादी समाज में इसके निहितार्थ में नहीं जा पाये। वे इस संभावना को नहीं देख पाये कि राज्य सत्ता और पार्टी में नेतृत्वकारी जगहों पर बैठे लोगों के पूंजीवादी रास्ते पर चल पड़ने से पूरी राज्यसत्ता का चरित्र बदल जायेगा और तब राजकीय सम्पत्ति समाजवादी के बदले पूंजीवादी सम्पत्ति में बदल जायेगी और समाज समाजवाद के बदले पूंजीवादी दिशा में चल पड़ेगा। वे यह नहीं देख पाये कि पुराने वर्गीय समाज से विरासत में मिली निजी सम्पत्ति की मूल्य-मान्यताएं और विचार गहरे पैठे होते हैं और नेतृत्वकारी लोगों को भी प्रभावित करते रहते हैं। इससे भी बड़ी बात यह कि समाजवादी समाज में माल, मुद्रा, मूल्य के नियम तथा बुर्जुआ अधिकारों की मौजूदगी पूंजीवादी प्रवृत्तियों को और ज्यादा फलने-फूलने का मौका देती है। यह सब बदले हुए रूप में वर्ग-संघर्ष को जन्म देता है। व पार्टी के भीतर चलने वाला वैचारिक संघर्ष इसी वर्ग संघर्ष की वैचारिक अभिव्यक्ति होता है। इस वर्ग-संघर्ष में केवल कुछ पूंजीवादी तत्वों के सफाये से विजय नहीं मिलेगी।

न ही इस वर्ग-संघर्ष को समाजवादी शिक्षा अभियान से निर्मूल किया जा सकता है सोवियत संघ में आम सांस्कृतिक विकास के साथ समूची जनता को समाजवाद की भावना में ढालने के लिए समाजवादी शिक्षा अभियान चलाये गये। पर जैसा कि बाद में चीन के अनुभव ने दिखाया इसके लिए सांस्कृतिक क्रांति की जरूरत थी, वह भी कुछ समय के लिए नहीं। इसे समाजवाद के पूरे संक्रमण काल में जारी रहना था। सत्ता में बैठे पूंजीवादी तत्वों से निपटने के साथ इसे समाज का लगातार क्रांतिकारीकरण करते हुए कम्युनिज्म तक ले जाना था। इस बीच सर्वहारा अधिनायकत्व लगातार जारी रहना था।

सोवियत संघ में समस्या एक दूसरे कोण से ज्यादा प्रत्यक्ष थी। वहां लेनिन के जमाने से नौकरशाहीकरण की समस्या एक बड़ी समस्या के रूप में चिह्नित थी। अर्थव्यवस्था के समाजवादीकरण से राज्य सत्ता का ताम-झाम फैला ही। सार्वजनिक उद्यमों और सामूहिक फार्मों में बड़े पैमाने पर प्रबन्धक इत्यादि जरूरी हुए। यह पूरी भारी-भरकम समाजवादी राज्य और उत्पादन वितरण मशीनरी पहले से मौजूद नौकरशाही की प्रवृत्ति को बढ़ाने की ओर न ले जाये, इसके लिए कोई विशेष प्रयास नहीं दीखते। किसी हद तक विशेषाधिकार सम्पन्न यह तबका जड़ीभूत न हो जाये और समाजवाद की दिशा में चलने के बदले उलटी दिशा में न मुड़ जाये इसके लिए कोई विशेष संघर्ष नहीं दीखता। एक तपी-तपाई बोल्शेविक पार्टी की मौजूदगी, जिसके नेतृत्व में पूरा समाज चल रहा था, भी इसकी कोई गारंटी नहीं थी कि विपर्यय नहीं होगा क्यों कि पार्टी स्वयं इस मशीनरी का हिस्सा बन गई थी। राज्य सत्ता और उद्यमों में सर्वप्रमुख लोग पार्टी के ही लोग थे।

सोवियत संघ में शुरुआती दौर में उद्यमों के प्रबन्धन की जो प्रणाली लागू हुई थी वह बाद तक जारी रही। इस प्रणाली को बदलकर समूचा प्रबन्धन स्वयं मजदूर वर्ग के हाथों में लाने का काम नहीं हो पाया। इससे प्रबन्धन तंत्र की विशेषाधिकार की स्थिति बनी रही। पार्टी के पदाधिकारियों पर भी आम पार्टी सदस्यों और मजदूर वर्ग के नियंत्रण की कोई प्रणाली विकसित नही हो पाई। ऐसे में मजदूर वर्ग और उपरोक्त विशेषाधिकार सम्पन्न तबके के बीच न केवल फर्क बना रहना था बल्कि इस बात की संभावना बनी रहनी थी कि यह तबका गलत दिशा में चल पड़े और स्वयं को एक शोषक वर्ग में रूपान्तरित कर ले। केवल ऊपर से सही नेतृत्व मामले को

बहुत समय तक नहीं संभाल सकता था। स्टालिन की मृत्यु के केवल तीन साल के भीतर सोवियत संघ में पूंजीवाद की पुनर्स्थापना इसीलिए संभव हो सकी।

यहां एक और चीज ध्यान में रखनी होगी। द्वितीय विश्व युद्ध में पार्टी के पुराने तपे-तपाये कार्यकर्ताओं की विशाल पैमाने पर शहादत ने सोवियत समाज के भावी विकास पर प्रभाव डाला था। द्वितीय विश्व युद्ध के द्वारा ढाई गई भौतिक तबाही की भरपाई जितनी आसानी से की जा सकती थी, इन आत्मिक शक्तियों की भरपाई उतनी आसानी से नहीं हो सकती थी। पुराने तपे-तपाये पार्टी कार्यकर्ताओं का बहुलांश नाजीवाद के हमले के खिलाफ लड़ाई में शहीद हो गया था। उनका स्थान लेने वाले नये कार्यकर्ता इतनी जल्दी उनका स्थानापन्न नहीं हो सकते थे। इसीलिए बाद में जब ख्रुश्चोव एण्ड कंपनी ने पूंजीवाद का रास्ता पकड़ा तो उन्हें वह चुनौती नहीं मिल सकी जो तपे-तपाये कार्यकर्ताओं के रहते मिली होती।

सोवियत संघ में सत्ता पर कब्जा करने से लेकर समाजवाद के निर्माण तक भीषण वर्ग-संघर्ष चला था। इसका अंतिम चरण खेती के सामूहिकीकरण के लिए चलने वाला संघर्ष था। बोल्शेविक पार्टी के भीतर लगातार चला भीषण संघर्ष भी समाज में चल रहे इसी वर्ग-संघर्ष का प्रतिबिंब था। पर एकबार समाजवादी निर्माण पूरा हो जाने के बाद मान लिया गया कि अब उत्पादन संबंध अंततः उत्पादक शक्तियों के अनुरूप बन गये हैं और समाज का आगे का विकास उत्पादक शक्तियों के विकास के जरिये होगा। अब उत्पादन संबंधों को बदलने के लिए तीखे वर्ग-संघर्ष  की जरूरत नहीं है उत्पादक शक्तियों का विकास होता जायेगा और तदनुरूप उत्पादन संबंध भी बदलते जायेंगे और अंततः समाज कम्युनिज्म तक पहुंच जायेगा। उत्पादक शक्तियों और उत्पादन संबंधों के परस्पर संबंधों के बारे में स्टालिन की ये सोच ठीक नहीं थी और सोवियत समाजवाद ने इसकी भारी कीमत चुकाई।

## X

## भविष्य की पहली झलक

सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण पूरी मानवजाति के स्तर पर पहला अभूतपूर्व ऐतिहासिक प्रयोग था। ऐसा इतिहास में अभी तक कभी नहीं हुआ था। इसमें सारा कुछ एकदम अछूती जमीन पर ही होना था। इसमें अतीत से नकल करने के लिए कुछ भी नही था। महान पेरिस कम्यून से भी केवल कुछ सबक ही हासिल थे। समाजवादी निर्माण की दिशा में आगे बढ़ने के लिए बस अगर कुछ थे तो मार्क्सवाद के आम सिद्धान्त। इन्हीं आम सिद्धान्तों की रोशनी में सोवियत संघ में समाजवाद का निर्माण करना था।

कहना न होगा कि सोवियत मजदूर वर्ग और उसकी गौरवशाली बोल्शेविक पार्टी ने यह महान कार्य शानदार तरीके से पूरा किया। उन्होंने दुनिया भर के संदेहवादियों को झुठलाते हुए वह कर दिखाया जो कि अभी तक केवल ख्वाब में था और बहुत सारे लोगों के लिए पगलाये कम्युनिस्टों का उटोपिया भर था। और उन्होंने यह किया दुनिया भर के सारे साम्राज्यवादियों के प्रतिरोध को कुचल कर। उनके द्वारा खड़ी की गई हजारों बाधाओं को लांघकर। महान लेनिन द्वारा शुरू किये गये इस समाजवादी निर्माण को पूरा किया स्टालिन ने जो आज भी दुनिया भर के सारे साम्राज्यवादियों, पूंजीपति वर्ग के भाड़े के टट्टुओं तथा सुधारवादियों के लिए अतीव घृणा के पात्र हैं। स्टालिन के प्रति यह घृणा उसी मात्रा में है जिस मात्रा में सोवियत समाजवाद के प्रति। यह अकारण नहीं है। यही होना भी चाहिए।

आज जब हम एक सदी बाद इस समाजवादी निर्माण पर फिर गौर फरमा रहे हैं तो यह याद रखना होगा कि यह इतिहास का पहला ऐसा प्रयोग था। इसीलिए इसमें गलतियां होनी ही थी, इसमें खामियां रहनी ही थीं। महत्व की बात ये गलतियां-खामियां नहीं हैं। महत्व की बात तो स्वयं वह प्रयोग है जिसने मानवता के भविष्य की झलक पहली बार दिखलाई। इस झलक ने तब कम्युनिस्टों के अलावा अन्य बहुत से मानवता के भविष्य के प्रति चिंतित ईमानदार लोगों को अनुप्राणित किया था। सदी भर के सारे दुष्प्रचार के बावजूद आज भी यही सच है।

'हमने भविष्य देखा है और वह कारगर है'।

■■■